ओ३म्

अथ वेदांगप्रकाशः

तत्रत्यः तृतीयो भागः

नामिकः

पाणिनीयाष्टाध्याय्यां द्वितीयो भागः

श्रीमत्स्वामिदयानन्दसरस्वतीकृतव्याख्यासहितः

श्री पण्डित युधिष्ठिर मीमांसकेन संशोध्य टिप्पणीभिरलंकृतः

पठनपाठनव्यवस्थायां पंचमं पुस्तकम्

प्रकाशक—

आर्य साहित्य मण्डल लि०, अजमेर

प्रथमावृत्ति
१०००

संवत् २०१० वि०
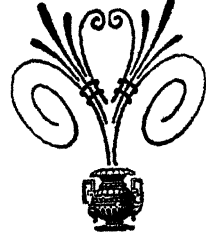
दो बातें

इस लघु पुस्तिका को व्याकरण अध्ययन करने वाले छात्रों के समक्ष उपस्थित करते हुये हम हर्ष का अनुभव करते है। यह इन्हीं छात्रबन्धुओं को व्याकरण के आरंभिक किन्तु प्रौढ सिद्धान्तकौमुदी के अर्थ को हृदयंगम कराने एवं सदा स्मृतिपथ में बनाये रखने के लक्ष्य से ही प्रस्तुत की गयी है।

व्याकरण के छात्रों की संस्कृत-साहित्य में विशेष गति न होने के कारण लच्छेदार उन्हीं संस्कृतपंक्तियों में सूत्र, वार्तिक तथा परिभाषाओं का व्याख्यान करना 'झोऽन्तस्य झोऽन्तोऽर्थः' कहावत को चरितार्थ करना होगा। अतः राष्ट्रभाषा में ही समझने में सुगमता होगी यह अनुभव किया गया। तदनुसार तत्तत्प्रयोगों के सम्बन्धित सभी साधनिकाओं को संक्षिप्त पर सुस्पष्ट भाषामयी पंक्तियों से यथा-संभव सरलता से समझाने का प्रयास किया गया है। प्रतिपाद्य विषय की कठिनता से इसमें साहित्यिक भाषा का प्रयोग संभव नहीं—यह सभी सहृदय विद्वान् मान ही लेंगे। प्रयोगों के अर्थ तथा साधनिका कौमुदी की प्राचीन टीका बालमनोरमा-तत्त्वबोधिनी के आधार पर ही प्रस्तुत की गयी है। आधुनिक व्याख्यानों की छाया से भी यह अस्पृष्ट है।

रा० म० प्र० खण्ड में निर्धारित अंश—स्त्रीप्रत्ययान्त का विवरण इसमें दिया गया है। यदि विद्यार्थियो ने इसको अपनाने में उत्साह दिखाया तो अग्रिम भागों का भी इसी क्रम से प्रस्तुत करने के लिये हम कृतसंकल्प हैं। इसमें हमारे अनवबोध, अनवधान तथा मुद्रण आदि में जो कुछ भी त्रुटि आ गयी हो उसके लिए हम आपकी सहानुभूति पूर्ण क्षमाकांक्षी है।

संस्कृत साहित्य का लघु सेवक—

लेखक

विषयानुक्रमणिका

॥ श्रीरामभद्रः शरणम् ॥

स-साधनिका

सिद्धान्तकौमुदी-प्रयोगसूची

(सूत्र-वार्तिक-परिभाषा—भाषानुवादसहिता)

अथ संज्ञाप्रकरणम्

नामं नामं हरेः पादौ आहं आहं गुरोः पदे ।
संगृह्णामि प्रयोगांस्तान् कौमुदीयान् समानपि ॥
टीकयन् भाषया तन्व्या सूत्रवार्त्तिकवृत्तिकाः ।
शाब्दिकांस्मारयाम्यस्मात् प्रीयतां मे रमापति. ॥

आ ये—'आ ये मित्रावरुणा' इस ऋचा मे 'निपाता आद्युदात्ताः' से 'आ' यह उदात्त है, 'यत्' शब्द 'फिषोऽन्त उदात्तः' इससे अन्तोदात्त है। उसके आगे के जस् सुप् होने के कारण 'अनुदात्तौ सुप्पितौ' से अनुदात्त है। त्यदाद्यत्व पररूपत्व तथा शीभाव ('जसः शी') होने पर 'आद् गुण' से गुण। 'एकादेश उदात्तेनोदात्तः' से एकार उदात्त हो गया।

अर्वाङ्—'अर्वाङ् यज्ञः संक्राम' इस ऋचा मे प्रथम अकार अनुदात्त है। 'अर्वन्त-मञ्चति' इस अर्थ मे 'ऋत्विग्॰' सूत्र से अञ्चति को सुप्—उपपद मे किन् प्रत्यय हुआ अथवा 'ऋ गतौ' धातु से 'स्नमिपद्यर्ति' सूत्र से 'वनिप्' और गुण से सम्पन्न 'अर्वन्' शब्द से 'धातोः' से अन्तोदात्त हुआ। 'वनिप्' पित् है, अतः 'अनुदात्तौ सुप्पितौ' से अनुदात्त हुआ। 'अञ्चति' का अकार भी 'धातो' से उदात्त है। 'उपपदमतिङ्' से समास करने पर 'समासस्य' से उदात्त होने पर 'अनुदात्त पदमेकवर्ज' से प्रथम अकार अनुदात्त है।

क्व॑वोऽश्वः—'क्व' यहाँ 'किमोऽत्' से हुये अत्-प्रत्यय का अकार 'तित्स्वरितम्' से स्वरित है। 'व' यह 'अनुदात्त सर्वमपादादौ' से अनुदात्त है। 'अश्वाः' यहाँ अशि को 'क्वन्' करने पर नित्स्वर से आद्युदात्त है। सहिता मे तो 'एकादेश उदात्तेनोदात्तः' से ओकार उदात्त है। तथा च 'क्व' यह ह्रस्व स्वरित 'वो' मे के ओकार रूप उदात्तपरवाला है।

रथानां न ये ३ऽरा—'येऽरा' मे एकार दीर्घस्वरित है, वह 'रा' इत्याकारात्मक उदात्तपरवाला है।

शतचक्रं यो ३ह्यः—के ओकार कम्पस्वरित है, वह 'ह्य' इस अकारात्मक स्वरितपरक है—इत्यादि स्थलो मे अनुदात्त भाग स्पष्टत. सुनाई देता है।

अग्निमीळे पुरोहितम्—'अग्निमीले' यहाँ अन्तोदात्त अग्निशब्द का 'अम्' से उत्पन्न पूर्वरूप एकादेश भी उदात्त ही है। यहाँ 'ईले' यह पूरा पद 'तिङतिङः' से अनुदात्तस्वर है। एवं च अग्निमीले ये दो पद संहिता मे 'उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः' से 'ईले' का ई स्वरित है। यहाँ का ए 'स्वरितात्०' सूत्र से प्रचयरूपा एकश्रुति है।

पलिक्क्नीः, चख्ख्नतुः, अग्ग्निः, घ्घ्नन्तीत्यत्र—वर्गों (क, च, ट, त, प ये ५ वर्ग हैं) के आदि के ४ अक्षरों को पाँचवा अक्षर पर मे रहने पर मध्य मे 'यम' नामक पूर्व के सदृश वर्ण प्रातिशाख्य (वैदिक व्याकरण) मे प्रसिद्ध है। उदाहरण मे 'क, ख, ग, घ' से त वर्ग के ५वाँ वर्ण 'न' परे रहने पर मध्य मे जो वर्ण पूर्वसदृश दीखते है वे 'यम' है।

दधीत्यस्य हरति शीतलं-षष्ठं सान्द्रम्—'नाज्झलौ' आकार सहित आच् और हल् परस्पर सवर्ण नही होते है। अतः 'दधि हरति' यहाँ धि के इ को 'हरति' के ह अकारस्थानिक परे रहने पर भी यण् नही होगा, 'दधि शीतलं' यहाँ 'इ-श' के समान स्थानिक होने पर भी सवर्णदीर्घ नहीं, इसी प्रकार 'षष्ठं सान्द्रं' दधि-शब्द से परे रहने पर तथा 'ऋ-लृ' के स्थान के होने पर भी यण् अथवा 'ऋत्यकः' से प्रकृतिभाव नही होगा।

विश्वपाभिः–'विश्वपा-भिः' इस स्थिति मे आ को समानस्थानिक ('अकुहविसर्जनीयाना कण्ठः' से) होने से ह मानकर 'हो ढ' से ढत्व नही होगा। यद्यपि आकार वर्णसमाम्नाय (१४ सूत्र 'अइउण्' आदि) मे पठित नही है, तथापि 'नाज्झलौ' सूत्र मे आकार का प्रश्लेष कर (न आच्-हलौ) देने से अच् और हल् मे सवर्णता निषिद्ध हो गई।

अथाऽच्सन्धिप्रकरणम्

सुद्ध्युपास्यः, मद्ध्वरिः, धात्त्रंश, लाकृतिः—सुधीभिः सुधिया वा उपास्यः–अर्थात् विद्वानों से या विद्वानो के पूजने योग्य (भगवान्) इस प्रकार तृतीया व षष्ठी तत्पुरुष समास करने पर 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से सुधी शब्द के आगे रहनेवाली 'भिस्' या 'आम्' के लोप होने पर 'सुधी × उपास्य' इस स्थिति मे 'इको यणचि' 'तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य' सूत्रो से अच् से अव्यवहित पूर्ववर्ति इक् के स्थान मे यण् की प्राप्ति होने पर 'स्थानेऽन्तरतमः' से सदृशतम आदेश-ईकार के समान स्थानीय य-कार के होने से सुध् य् × उपास्य–ऐसा होने पर–'अनचि च' अच् से परे यर् को द्वित्व विकल्प से होगा, अच् पर मे रहने पर न होगा – से धकार को विकल्प से द्वित्व होने पर, यहाँ 'स्थानिवदादेशोऽनल्विधौ' आदेश स्थानिवत् होगा, किन्तु स्थानी अल् (अक्षर) के आश्रय से कार्य कर्तव्य होने पर न होगा—से यकार को अच् मानकर द्वित्व निषेध की शंका नही कर सकते, 'अनल्विधौ' से स्थानिवद्भाव निषिद्ध है, फिर भी 'अचः परस्मिन्पूर्वविधौ' पर को निमित्त मानकर हुये अच् स्थान का आदेश स्थानिवत् होगा स्थानी अच् से पूर्व का कार्य-कर्तव्य होने पर–से स्थानिवद्भाव की प्राप्ति के कारण 'अनचि च' से प्राप्त द्वित्व का निषेध होने पर 'न पदान्त-द्विर्वचन-वरे-यलोप-स्वर-सवर्णानुस्वार-दीर्घजश्चर्विधिषु' परनिमित्त अजादेश को स्थानिवद्भाव नही होता है पदान्तादिविधि मे से द्वित्व हो ही जाता है। 'झलां जश् झशि' से प्रथम धकार को द-कार होने पर–'संयोगान्तस्य लोपः'–'अलोऽन्त्यस्य' से यकार के लोप('अदर्शनं लोपः') प्राप्त होने पर–'यणः प्रतिषेधो वाच्यः' वार्तिक से लोपनिषेध होने पर–'यणो मयो द्वे वाच्ये' वार्तिक मे मयः यह पञ्चमी और यणः यह षष्ठी–इस पक्ष में मय् से पर मे रहने वाले यकार को भी द्वित्व होने पर ४ रूप होंगे—एक

घ और एक य, दो घ-दो य, दो घ-एक य और एक घ-दो य। इसी प्रकार इक् मे उ-ऋ-लृ की सन्धि समझनी चाहिये। वहाँ व्-र्-ल् ये यण् होगे। द्वित्वादि यथोचित स्थान मे पूर्ववत् है।

पुत्रादिनी त्वमसि पापे!—पुत्र-शब्द मे 'अनचि च' सूत्र से विहित वैकल्पिक द्वित्वका 'नादिन्याक्रोशे पुत्रस्य' पुत्र शब्द को द्वित्व न होगा, आदिनी शब्द परे रहते तथा आक्रोश (क्रोध) व्यक्त हो—से निषेध हो जाता है।

आक्रोशे किम्? पुत्त्रादिनी सर्पिणी—'तत्त्वकथने द्विर्वचनं भवत्येव' जहाँ यथार्थ कहना है कि पुत्र खानेवाली सॉपिनी है वहाँ तो द्वित्व होगा ही—से द्वित्व हुआ।

पुत्रपुत्रादिनी त्वमसि पापे!—'तत्परेच' वार्तिकसे आदिनी-शब्द परवाले पुत्र शब्द आगे रहने पर 'अनचि च' से प्राप्त द्वित्वका निषेध हो जाता है।

पुत्रहती पुत्त्रहती, पुत्त्रजग्धी, पुत्रजग्धी—'वा हतजग्धयोः' वा० हत-जग्ध शब्द परे रहते तद्द्वित्व विकल्प से होगा।

इन्न्द्र', इन्द्रः राष्ष्ट्रम्, राष्ट्रम्—'त्रिप्रभृतिषु शाकटायनस्य' ३ आदि संयुक्त वर्ण परे रहते यर् का द्वित्व विकल्प से होता है--से न्द्र-ष्ट्र मे ३ वर्ण संयोग होने से न्-ष् का द्वित्व।

अर्कः, ब्रह्मा—'सर्वत्र शाकल्यस्य' सभी स्थलो मे शाकल्याचार्य के मत मे द्वित्व नही होता।

दात्रम् पात्रम्—'दीर्घादाचार्याणा' दीर्घ से आगे रहनेवाले यर् का द्वित्व (कुछ आचार्यों के मत से ही द्वित्व का निषेध है,) नहीं होता।

हर्य्यनुभवः, हर्यनुभवः, नह्य्यस्ति नह्यस्ति—'अचो रहाभ्या द्वे' अच् से परे रेफहकारों से परे स्थित यर् का वैकल्पिक द्वित्व होता है।

लोपारम्भफलं तु-'आदित्य्यं हविः' इत्यादौ—'हलो यमा यमि लोपः' हल् से पर मे रहनेवाले यम् का वैकल्पिक लोप होता है यम् परे रहने पर। इस लोपशास्त्र आरंभ करने का प्रयोजन 'आदित्यं हविः' इस प्रयोग मे एक यकारवाला रूप है, अन्यथा 'दित्यदित्यादित्य'-से ण्य करने पर दो यवाला ही रूप रहेगा।

नेह–'माहात्म्यम्'–यहाँ 'यमा यमि' इस प्रकार (य आदि को य आदि ही) यथासख्यविज्ञान से मकार का लोप नहीं होता।

हरये, विष्णवे, नायकः, पावकः—'एचोऽयवायावः' एच् को क्रम से अय्-अव्-आय्-आव् होगे अच् परे रहते—से अयादेश होने पर य्-व् के उच्चारण-सामर्थ्य से 'तस्य लोपः' से लोप न होकर हरे-ए='हरये' बनता है। अत एव 'हलन्त्य' से प्रकृत मे प्रयोजन न होने से इत्सज्ञा भी न होगी। ए, ओ, ऐ, औ के स्थान मे होनेवाले अय्-अव्-आय्-आव् के ये चार उदाहरण है।

गोर्विकारो 'गव्यम्', नावा तार्य 'नाव्यम्'—'वान्तोयि प्रत्यये' यकारादि प्रत्यय परे रहने पर ओ-औ को अव् तथा आव् होते है, 'गोपय'–'नौवयो'–से गो-यत्, नौ-यत्।

गव्यूतिः—'गोर्यूतौ छन्दस्युपसंख्यान' 'अध्वपरिमाणे च' वार्तिको से गो के ओ को अव् हुआ। 'वान्त' यहाँ पर वकार के पहले तथा 'गोर्यूतौ छन्द०' यहाँ छकार के पहिले वकार का प्रश्लेप करके 'लोपो व्यो' से वकार लुप्त होने पर भी वकारान्त आदेश होगा, फलतः वकार का लोप न होगा।

लव्यम्, अवश्यलाव्यम्—'धातोस्तन्निमित्तस्यैव' इस नियमविधि से यादि प्रत्ययनिमित्तक धातु सम्बन्धि एच् को ही वान्त आदेश होता है, 'लूञ्—छेदने' धातु।

तन्निमित्तस्यैवेति किम्? ओयते–औयत—'ओयते–औयत' स्थलो मे यादि प्रत्यय (यक्) होने पर भी उक्त नियम से आदेश नहीं होता है।

क्षेतुं शक्यं क्षय्यम्, जेतुं शक्यं जय्यम्—'क्षय्यजय्यौ शक्यार्थे' से शक्यार्थ मे क्षय्य जय्य रूप ही रहेगे, यह निपातन है।

शक्यार्थे किम्? क्षेतुं जेतुं योग्यं क्षेयं पाप जेयं मनः—'क्षेयं जेय' इन प्रयोगों में तो 'अर्हे कृत्यतृचश्च' से योग्यार्थ मे 'यत्' प्रत्यय है।

क्रय्यम्, क्रेयमन्यत्—'क्रय्यस्तदर्थे' से खरीददार लोग खरीदे इस बुद्धि से फैलाई वस्तु क्रय्य है, यह भी निपातन है। 'क्रेय' मे (खरीदने योग्य) तो 'अर्हे कृत्यतृचश्च' से यत् होता है।

हर एहि-हरयेहि, विष्णो इह-विष्णविह, श्रिया उद्यतः-श्रियायुद्यतः, गुरा उत्कः-

गुरावुल्क—'लोपः शाकल्यस्य' अवर्ण पूर्ववाले पदान्त य–व को विकल्प से लोप होगा। लोपपक्ष मे पुनः परसवर्णादि सन्धि न होगी, यतः 'पूर्वत्रासिद्धं' से लोपशास्त्र त्रैपादिक होने से असिद्ध हो जाता है अर्थात् सन्धि करने के प्रसंग मे य् व् रहते है।

'कानि सन्ति' 'कौ स्तः'—यहाँ असधातु के 'श्नसोरल्लोपः' से विहित अल्लोप के स्थानिवद्भाव (अ होने) से यण् तथा आव् आदेश क्रम से प्राप्त होते है, पर 'न पदान्त०' से पदान्त विधि मे स्थानिवद्भाव का निषेध होने से यण् तथा आवादेश नही होते है।

उपेन्द्रः, रमेशः, गङ्गोदकम्, कृष्णर्धिः, कृष्णर्द्धिः, कृष्णर्द्द्धिः, तवल्कार—'आद् गुणः' अवर्ण से अच् परे रहते पूर्वपर के स्थान मे गुण (अ-ए-ओ) होगा। उप-इन्द्र· रमा-ईशः गङ्गा-उदक—मे 'ए ओ' हुये कृष्ण × ऋद्धि—ऐसी स्थिति मे 'आद् गुणः' से गुण-अ सदृशतम होने से होगा, वह 'उरण् रपर.' से र-पर होकर अर् आया। 'अचो रहाभ्या द्वे' से पाक्षिक द्वित्व करने पर 'झरो झरि सवर्णे' से विकल्प से प्रथम धकार का लोप होगा। एवं च द्वित्व न करे लोप भी करे तो १ धवाला. द्वित्व तथा लोप करे तो २ धवाला, द्वित्व करने पर लोप न करने पर ३–धवाला इस प्रकार तीन रूप हुये। यहाँ पहले के ध को 'झला' से जश्त्व होगा।

'ऋलृवर्णयोर्मिथः सावर्ण्यं वाच्यम्' वार्तिक से लृ के आगे अच् रहने पर भी अल् (र-प्रत्याहार मे र-ल है, र-पर से ल-पर भी सिद्ध है) गुण हुआ। 'यणो मयो द्वे वाच्ये' वार्तिक मे 'यणः' को पञ्चमी और 'मयः' को षष्ठी–इस पक्ष मे क–कारका द्वित्व होगा, लको 'अनचि' च से वैकल्पिक द्वित्व होगा, अतः केवल ल द्वित्व वाला, केवल क-द्वित्व-वाला ल्-क् दोनो द्वित्ववाला, और दोनो द्वित्व रहित, इस प्रकार ४ रूप होगे। वही श्लोक मे संगृहीत है।

'द्वित्वं लस्यैव कस्यैव नोभयोरुभयोरपि।
तवल्कारादिषु बुधैर्ज्ञेयं रूपचतुष्टयम्॥'

कृष्णैकत्वम्, गङ्गौघः, देवैश्वर्यम्, कृष्णौत्कण्ठ्यम्,—'वृद्धिरेचि' अवर्ण से एच् परे रहते वृद्धि (आ–ऐ–औ) होगी।

उपैति, उपैधते, प्रष्ठौह—'एत्येधत्यूठ्सु' अवर्ण से एजादि एति-एधति-ऊठ् परे रहते पररूपगुणापवादवाली वृद्धि होगी।

उपेतः, मा भवान्प्रेदिधत्,–'अवेहि'—यहाँ एजादि इण्-एधधातु न होने से वृद्धि नही होगी। 'पुरस्तादपवादा अनन्तरान् विधीन् बाधन्ते, नोत्तरान्' इस न्याय से यह वृद्धि अव्यवहितोत्तरशास्त्र पररूप ('एङि पररूपम्') का ही अपवाद है, न कि 'ओमाङोश्च' से विधीयमान पररूप का। अतः 'अवैहि' यह वृद्धि अशुद्ध ही है।

अक्षौहिणी सेना—'अक्षादूहिन्यामुपसंख्यानम्' वा० अक्ष शब्द से ऊहनी शब्द परे रहने पर वृद्धि-औ।

स्वैरः; स्वैरी, स्वैरिणी—'स्वादीरेरिणो' वा० स्व-से ईर-ईरिन् परे रहते वृद्धि।

प्रौहः, प्रौढः प्रौढिः—'प्रादूहोढोढ्येषैष्येषु' वा० से प्र-से ऊह ऊढ-ऊढि परे रहते वृद्धि।

प्रोढवान्—'अर्थवद्ग्रहणे नानर्थकस्य ग्रहण' इस परिभाषा से–जोकि 'व्रश्चभ्रस्ज' सूत्र मे 'राजि' से अन्य 'भ्राजि' के ग्रहण से ज्ञापित है–वार्तिक मे क्त प्रत्ययान्त ऊढ ही गृहीत है, नकि क्तवतुप्रत्ययान्त ऊढवत् का एकदेश, अतः यहाँ वृद्धि नही होगी, गुण।

प्रैषः-प्रैष्यः—ह्रस्वोपध इषधातु को घञ् ण्यत् करने पर लघूपध गुण होने पर एष-एष्य बनेगा, अब प्र ✕ एष-एष्य ऐसी स्थिति मे पररूप न होकर 'प्रादूहो' से वृद्धि (ऐ) होगी।

प्रेषः-प्रेष्यः—दीर्घोपध 'ईष उञ्छे ईष-गतिहिंसादर्शनेषु' धातु के रूप तो गुण होकर प्रेष-प्रेष्य ही बनेंगे।

सुखार्तः, तृतीयेति किम्? परमर्तः—'ऋते च तृतीयासमासे' वा० तृतीया समास मे अकार से ऋत शब्द परे रहते वृद्धि 'उरण्' से (रपर-आर्)। तृतीयातत्पुरुष के अतिरिक्त कर्मधारयादि समास मे परम ✕ ऋतः–आदि स्थलों मे गुणादि ही होंगे।

प्रार्णम्, वत्सतरार्णम्, कम्बलार्णम्, वसनार्णम् ऋणार्णम्, दशार्णो देशः, नदी च दशार्णा—'प्र–वत्सतर–कम्बल–वसनार्ण–दशानामृणे' वा० ६ शब्दों को ऋण शब्द परे रहने पर वृद्धि।

प्रार्च्छति, उपार्च्छति—'उपसर्गादृति धातौ' अवर्णान्त उपसर्ग से ऋकारादि धातु परे रहते वृद्धि–से वृद्धि हुई। यहाँ यद्यपि 'अन्तादिवच्च' सूत्र से 'उपार्' के रेफ को पदान्त मानकर 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग प्राप्त होता है, तथापि 'उभयथर्क्षु' 'कर्तरि चर्षिदेवतयो' इत्यादि निर्देश से अन्तवद्भाव से पदान्तरेफ का विसर्ग नही होता है। उपसर्ग पद से ही धातु का आक्षेप होने पर भी 'धातोः' यह कथन योगविभाग से पुनः वृद्धि का विधान करता है, जिससे 'ऋत्यकः' सूत्र से प्राप्त पाक्षिक भी प्रकृतिभाव यहाँ पर नहीं होगा।

प्रार्षभीयति-प्रर्षभीयति, प्राल्कारीयति-प्रल्कारीयति, उपऋकारीयति, उपर्कारीयति—'वा सुप्यापिशलेः' अवर्णान्त उपसर्ग से ऋकारादि सुब्धातु परे रहते विकल्प से वृद्धि। सावर्ण्य होने से लृवर्ण का भी ग्रहण हुआ। 'ऋति' मे तपर होने के कारण दीर्घ ॠकारान्त धातु के योग मे वृद्धि नही होगी, गुण होगा।

प्रेजते, उपोषति, उपेडकीयति, उपैडकीयति, प्रोघीयति, प्रौघीयति—'एङि पररूपम्' अवर्णान्तोपसर्ग से एङादि धातु के परे रहने पर पररूप होता है। यहाँ 'वा सुपि' का अनुवर्तन कर वाक्यभेद से अर्थ करना चाहिए, इससे एङादि सुब्धातु परे रहने पर पररूप विकल्प से होगा।

क्वेव भोक्ष्यसे? अनियोगे किम्? तवैव—'एवे चानियोगे' वार्तिक से 'एव' के अनिर्धारणार्थ मे पररूप होगा। निर्धारण मे तो वृद्धि ही होगी।

शकन्धुः, कर्कन्धुः, कुलटा। सीमन्तः केशवेशे, सीमान्तोऽन्यः, मनीषा, हलीषा, लाङ्गलीषा, पतञ्जलिः, सारङ्गः पशुपक्षिणोः, साराङ्गोऽन्यः, मार्त्तण्ड—'अचोऽन्त्यादिटि' अच् के मध्य मे जो अन्त्य वह आदि है जिसको वह 'टि' कहाता है। 'शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम्' वा० से टिभाग (मनीषा-पतञ्जलि मे अस् तथा अत्, अन्यत्र अ) को

पररूप होगा। 'सीमन्तः केशवेशे' वा० से पररूप, 'सीमान्त' यहाँ तो सीमा का अंत अर्थ होने के कारण सवर्णदीर्घ। 'सारङ्गः पशुपक्षिणोः' यहाँ तो पररूप, उत्कृष्टागवाला इस अर्थ मे तो सवर्णदीर्घ।

स्थूलोतु, स्थूलौतुः, बिम्बोष्ठः, बिम्बौष्ठः, समासे किम्? तवौष्ठः—'ओत्वोष्ठयोः समासे वा' वा० से वैकल्पिक पररूप। 'समासे' कहने से व्यस्त स्थलो मे पररूप नहीं, वृद्धि।

शिवायोनमः, शिव एहि–शिवेहि—'ओमाङोश्च' अवर्ण से परे ओम्-आङ् के योग मे पररूप। शिव × आ × इहि इस स्थिति मे धातूपसर्ग का कार्य अन्तरङ्ग होने से सवर्ण दीर्घसन्धि पहले ही नही कर सकते, अतः इस रूप की सिद्धि 'आद् गुणः' से नही होगी। किन्तु आ-इहि का गुण, अन्तादिवद्भाव से ए मे आङ्त्व।

पटत् इति–पटिति। अदिति—'अव्यक्तानुकरणस्यात इतौ' ध्वनि के अनुकरण मे अत् से इति परे रहने पर पररूप एकादेश, अत् को पररूप-इ। 'एकाचो न' वा० से अदिति मे पररूप नही।

पटत्पटेति, पटत्पटदिति—'नाम्रेडितस्यान्त्यस्य तु वा' आम्रेडित को पररूप न होगा, अन्त्य तकार मात्र को विकल्प से होगा। 'डाचि बहुल द्वे भवतः' वार्तिक मे बहुल शब्द होने से द्वित्व। 'तस्य परमाम्रेडितम्' से दूसरे बारके कथन को आम्रेडित संज्ञा है। 'झला जशोऽन्ते' पदान्त मे झल् को जश्त्व होता है—से त् को द्।

दैत्यारिः, श्रीश, विष्णूदयः, अचि किम्? 'कुमारी शेते', अक किम्? हरये—'अकः सवर्णे दीर्घः' इस सूत्र की व्याख्या मे 'सवर्ण अच्' आगे रहने पर इसलिये कहा गया कि 'कुमारी × शेते' यहाँ भी कोई सन्धि कार्य न हो। 'नाज्झलौ' से सावर्ण्य का निषेध केवल वर्णसमाम्नाय (१४ सूत्र) मे श्रूयमाण वर्णों का ही, न कि दीर्घ–ई और शकार का, यतः ग्रहणक ('अणुदित्सवर्णस्य') शास्त्र सावर्ण्य के विधि और निषेध

('तुल्यास्य०' 'नाज्झलौ') के पहले अनिष्पन्न था। सूत्र मे 'अकः' इसलिए कहा गया कि हरे×ऐ इस स्थिति मे दीर्घ न प्रसक्त हो।

होतृकारः, होत्लृकारः, होल्लृकार, होतृकारः—'ऋति सवर्णे ऋ वा'। 'लृति सवर्णे लृ वा' यहाँ सवर्ण होने से विकल्प से ॠ भी होगा। यहाँ दोनो विधीयमान ॠ-लृ नृसिंहवत् विलक्षण है। पक्ष मे 'ऋत्यकः' भी।

हरेऽव, विष्णोऽव—'एङः पदान्तादति' पदान्त एङ् से अत् परे रहते पूर्वरूप।

गोअग्रम्, गोऽग्रम्—'सर्वत्र विभाषा गोः' लोक तथा वेद मे एङन्त गो को अत् परे रहते विकल्प से प्रकृतिभाव पदान्त मे। प्रकृतिभाव के विकल्प होने से पक्ष मे पूर्वरूप हो जाता है।

चित्रग्वग्रम्, गो—एङन्त-कथन से चित्रगु-अग्रम् को प्रकृतिभाव न होकर यण्। पदान्ते-कहने से गो-अस् (प ए. व.) पूर्वरूप ही हुआ।

गवाग्रम्, पदान्ते किम्? गवि—'अवङ् स्फोटायनस्य' अच् परे रहते पदान्त मे गो शब्द को 'अवङ्' आदेश विकल्प से होता है। ङित् होने से अन्त्य को। 'पदान्ते' क्यो? गो×ङि इस अवस्था मे पाक्षिक भी 'अव' आदेश न हो।

गवाक्षः—व्यवस्थित विभाषा (क्वचित् होगा ही, क्वचित् नही होगा) से।

गवेन्द्रः—'इन्द्रे च' गो-को इन्द्र परे रहते अवङ्।

एहि कृष्ण ३ अत्र गौश्चरति, हरी एतौ, नित्यमिति किम्? 'हरी एतौ'—'प्लुत-प्रगृह्या अचि नित्यम्' प्लुत और प्रगृह्य अच् परे रहते प्रकृति से रहते है। यहाँ णकार के उत्तरवर्ती अकार 'दूराद्धूते च' से प्लुत है। हरी-एतौ 'इदूदे'-से प्रगृह्य है। नित्य-'हरी एतौ' आदि लक्ष्यो मे 'इकोऽसवर्णे' से विधीयमान ह्रस्वयुक्त न हो-इसलिये कहा गया है।

चक्रि अत्र, चक्र्यत्र, पदान्ता इति किम्? गौर्यौ–'इकोऽसवर्णे शाकल्यस्य ह्रस्वश्च' पदान्त इक् विकल्प से प्रकृत्या रहेगे असवर्ण अच् आगे रहने पर ह्रस्व भी होगे। अन्यथा यण्। 'पदान्ता' इसलिये कहा गया कि 'गौरी ×औ' यहाँ यह ह्रस्वयुक्त प्रकृतिभाव न हो।

वाप्यश्वः, पार्श्वम्—'न समासे' वा०, 'सिति च' वा० 'पर्शो णस् वक्तव्यः' वा० से समास मे तथा स-इत् वाला प्रत्यय आगे रहने पर भी प्रकृतिभाव नहीं।

ब्रह्म ऋषि, ब्रह्मर्षि, आच्छंत, सप्तऋषीणाम्, सप्तर्षीणाम्—'ऋत्यकः' ऋ परे रहते अक् प्रकृत्या होगा। वैकल्पिक प्रकृतिभाव है। यहाँ भी पदान्तवाले अक्। 'आर्छत्' मे 'आ' पदान्तवाला नही। समास मे भी यह प्रकृतिभाव होता है।

अभिवादये देवदत्तोऽह भोः, आयुष्मानेधि देवदत्त३—'वाक्यस्य टेः प्लुत उदात्तः' 'प्रत्यभिवादेऽशूद्रे' शूद्रेतर के विषय मे प्रत्यभिवाद वाक्य के टि-भाग को प्लुत होगा।

अभिवादये गार्ग्यहं भोः, आयुष्मती भव गार्गि—'स्त्रियाँ न' वा० से प्लुत नही।

नेह-आयुष्मानेधि—नाम वा गोत्र का उच्चारण जहाँ हो वही प्लुत होता है—इस विवरण से यहाँ प्लुत नही।

आयुष्मानेधि भोः३, आयुष्मानेधीन्द्रवर्म३न्, आयुष्मानेधीन्द्रपालित३—'भो-राजन्य-विशा वेति वाच्यम्' वा०से तीनो स्थलो मे क्रम से प्लुत।

सक्तून् पिब देवदत्त३—'दूराद्धूते च' दूर से बुलाने मे टिभाग को प्लुत।

हे३राम, राम है३—'हैहेप्रयोगे हैहयो.' है-हे- के प्रयोग मे दूरसे बुलाने मे केवल इन्ही को प्लुत होगा।

दे३वदत्त, देवद३त्त, देवदत्त३, गुरो. किम्? वकारात्परस्याऽकारस्य मा भूत्, अनृतः किम्? कृष्ण३—'गुरोरनृतोऽनन्त्यस्याप्येकैकस्य प्राचाम्' दूर से बुलाने मे वाक्य के ऋ से भिन्न अनन्त्य गुरु वर्ण को विकल्प से प्लुत। 'गुरोः' से 'देवदत्त' मे वकारोत्तर अकार को न हो। 'अनृतः' क्यो-कृष्ण मे ककारोत्तरवर्ति ऋ को न हो। 'एकैक' कहने से एक साथ सबको प्लुत न होकर क्रम से होगा। इस सूत्र मे 'प्राचा' इस प्रकार योग (सूत्र) विभाग किया जाता है। इससे फलत. सभी प्लुत विकल्प से होते है-यह अर्थ हुआ।

सुश्लोक३इति, सुश्लोकेति, वत्किम्? अग्नी३ इति, चिनुहि३ इति, चिनुहीति—'अप्लुतवदुपस्थिते' 'उपस्थिते'=अनार्ष 'इति' शब्द, परे रहते प्लुत अप्लुतवत् होगा, अतः सन्धि हुई। यहाँ 'वत्' (जैसा) न कहने से अप्लुत का विधान हो जायगा और प्लुत का निषेध होगा तथा च 'प्लुतप्रगृह्या०' से विहित प्रगृह्याश्रय प्रकृतिभाव मे 'अग्नी३ इति' इस प्रकार प्लुत का श्रवण ही न होगा, यह अभीष्ट नही है।

चिनु हि३ इदम्, चिनु हीदम्—'ई चाक्रवर्मणस्य' चाक्रवर्मणाचार्य के मत से ई-कार प्लुत अच् परे रहते अप्लुत-सा हो जाता है। अर्थात् सवर्ण-दीर्घादि सन्धि कार्य हो जाता है, 'विभाषा पृष्ट'-से हि प्लुत है।

हरी एतौ, विष्णू इमौ, गङ्गे अमू, पचेते इमौ, 'मणी वोष्ट्रस्ये'ति—'ईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम्' ई-ऊ-ए-अन्त द्विवचन प्रगृह्य होगा। 'मणी वोष्ट्रस्य लम्बेते' इत्यादि प्रयोगो मे इव-शब्दार्थक वा-अथवा व-शब्द अव्यय समझना चाहिये, न कि इव-शब्द।

रामकृष्णावमू आसाते, मात्किम्? अमुकेऽत्र—'अदसो मात्' अदस् के मकार से परे ई-ऊ प्रगृह्य होगे। यहाँ 'मात्' न कहने से पिछले 'ईदूदेत्०' सूत्र से एकार की भी अनुवृत्ति होकर 'अमुकेऽत्र' इत्यादि स्थलों मे प्रगृह्यसंज्ञा-प्रकृति भाव हो जायेगे, 'मात्' कहने से अदस् के मकारोत्तर मे कही 'ए' कार होता नही, अतः एकार का अनुवर्तन ही नहीं होगा।

अस्मे इन्द्राबृहस्पती—'शे' एकारान्त आदेश (वेदमे) प्रगृह्य होगा।

इ इन्द्र, उ उमेशः, आ एवं नु मन्यसे, आ एवं किल तत्, ईषदुष्णम्-ओष्णम्—'निपात एकाजनाङ्' एक अच् आङ् भिन्न प्रगृह्य होता है। 'अनाङ्' कहने से अङित् निपातभूत आकार ही प्रगृह्य होता है। ङित् वाला आकार तो प्रगृह्य नहीं है, अतएव थोड़ा गर्म अर्थ मे आ × उष्णं = ओष्णम् ही बनेगा गुण, प्रकृतिभाव नही। ङित्-अङित् का संग्रह—

ईषदर्थे क्रियायोगे मर्यादाभिविधौ च यः।
एतमातं ङितं विद्याद्वाक्यस्मरणयोरङित्॥

अहो ईशाः—'ओत्' ओकारान्त निपात प्रगृह्य है।

विष्णो इति, विष्ण इति, विष्णविति, अनार्ष इति किम्? 'ब्रह्मबन्ध'वित्यब्रवीत्—'सम्बुद्धौ शाकल्यस्येतावनार्षे' सम्बुद्धिनिमित्त वाला ओकार अवैदिक इति शब्द आगे रहने पर विकल्प से प्रगृह्य होगा। सूत्र मे 'अनार्षे' न कहने पर 'ब्रह्मबन्धो × इति' इस स्थिति मे पाक्षिक प्रकृतिभाव होता।

उ इति, विति—'उञः' उकार को इति परे रहने पर पाक्षिक प्रगृह्य सज्ञा तथा प्रकृतिभाव हो जायगा। पक्ष मे यण् हुआ।

ऊँ इति, विति—'ऊँ' उञ को इति परे रहने पर दीर्घ अनुनासिक तथा प्रगृह्य ऊँ आदेश विकल्प से होगा। पक्ष मे यण् अथवा प्रगृह्य उ ही बना रहेगा।

किमु उक्तम्, किम्वुक्तम्—'मय उञो वो वा' मय् से परे रहनेवाले उञ् को अच् परे रहने से व-कार विकल्प से होगा। पक्ष मे 'निपात एकाच्' से प्रगृह्यता होगी। वकार विधायक शास्त्र त्रैपादिक है—'मोऽनुस्वार' से परे है, अनुस्वार की दृष्टि से वकार विधि असिद्ध है। अर्थात् अनुस्वार नही होगा।

सोमो गौरी अधिश्रितः, मामकी तनू इति, 'अर्थग्रहणं किम् ? वृत्तावर्थान्तरोपसंक्रान्ते मा भूत्' वाप्यश्वः—'ईदूतौच सप्तम्यर्थे' सप्तमी के अर्थ मे पर्यवसन्न ई और ऊ प्रगृह्य होगे। यहाँ 'गौरी-तनू' की सप्तमी का 'सुपा सुलुक्' से लुक् है। 'अर्थ' इसलिये कहा कि समास मे अर्थान्तर से युक्त स्थल मे न हो, जैसे 'वाप्यश्वः' यहाँ वापी शब्द वाप्यधिकरणक द्रव्य का बोधक (लक्षक) है। केवल सप्तम्यर्थ मे पर्यवसन्न नही है।

दधिँ, दधि, अप्रगृह्यस्य किम् ? अग्नी—'अणोऽप्रगृह्यस्यानुनासिकः' प्रगृह्यभिन्न अण् को अवसान मे अनुनासिक विकल्प से होगा। अप्रगृह्य कहने से 'ईदूदेद०' से प्रगृह्य 'अग्नी' यहाँ अनुनासिक न होगा। अच्सन्धि समाप्त।

हल्सन्धि प्रकरण

हरिश्शेते, रामश्चिनोति, सच्चित्, शार्ङ्गिञ्जय—'स्तोः श्चुना श्चुः' सकार-तवर्ग को शकार-चवर्ग से योग होने पर शकार चवर्ग होगा। स्-श् तथा स्-च् के योग मे स् को श्। त् और न् को चवर्ग से योग मे श्चुत्व-च् तथा ञ् हुये।

विश्नः, प्रश्नः—'शात्' शकार से परे रहनेवाले तवर्ग को श्चुत्व (चवर्ग) न होगा। यह अपवाद है, अतएव सकार को शकार से ही और तवर्ग को चवर्ग से ही योग हो—ऐसा यथासंख्याश्रयण अभीष्ट नही।

रामष्षष्ठः, रामष्टीकते, पेष्टा, तट्टीका, चक्रिण्ढौकसे—'ष्टुना ष्टुः' सकार-तवर्ग को षकार-टवर्ग से योग होने पर षकार टवर्ग होगा, स्-ष, स्-ट, ष्-त, त्-ट, तथा न्-ढ के योग मे ष्-ष्-ट्-ट्-ण् हुये।

षट् सन्तः, षट्ते, पदान्तात् किम्? इट्टे, टोः किम् ? सर्पिष्टमम्—'न पदान्ताट्टोरनाम्' पदान्त टवर्ग से पर मे रहनेवाले नाम् से अतिरिक्त सकार तवर्ग को

ष्टुत्व न होगा। यह भी अपवाद है। सूत्र मे सकार तवर्ग को 'अनाम्' यह विशेषण है। 'पदान्तात्' यह टवर्ग का विशेषण है। पदान्तात् न कहने पर ईट्×ते इस स्थिति मे ष्टुत्व बाधित हो जायगा जो कि अनभीष्ट है। 'टवर्ग से परे' न कहने से सर्पिष्×तम इस स्थिति मे तकार को टकार न होकर अनिष्ट रूप बनता।

षण्णाम्, षण्णवतिः, षण्णगर्यः—'अनाम्–नवति-नगरीणामिति वाच्यम्' वा०सूत्र मे नाम् के साथ नवति–नगरी शब्द को जोड़ना चाहिये, जिससे नाम् नवति नगरी से भिन्न स्तु को ष्टु न होगा। अर्थात् इन तीनो स्थलो पर ष्टुत्व होगा। षष् × नाम् इस स्थिति मे 'स्वादिष्वसर्वनामस्थाने' से पदसंज्ञा होने से षकार का जश्त्व डकार होने पर 'प्रत्यये भाषाया नित्य' वा० से डकार को (अनुनासिक) णत्व होने पर उससे परे रहनेवाले (ष० ब०) नाम् को 'ष्टुना ष्टुः' से ष्टुत्व (ण) होता है। इसी प्रकार षट् × नवतिः षट्× नगर्यः स्थलो मे भी ष्टुत्व निषेध न होगा।

सन्षष्ठः—'तो: षि:' तवर्ग को षकार आगे रहने पर ष्टुत्व न होगा। यथासख्याश्रयण न होने से 'ष्टुना ष्टुः'से प्राप्त ष्टुत्व का यह निषेध है। अन्यथा सन्× षष्ठः मे न को ण हो जाता।

वागीशः, चिद्रूपम्—'झला जशोऽन्ते' पदान्त मे झल् को जश् होगा। अन्तर्वर्तिविभक्ति मानकर वाक्-ईश. आदि लक्ष्यो मे पदान्तत्व है।

एतन्मुरारि, एतद्मुरारिः, चतुर्मुखः—'यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा' पदान्त यर् को अनुनासिक वर्ण पर मे रहने पर विकल्प से अनुनासिक होगा। पूर्वोक्तरीति से पदान्त यर् द का अनुनासिक म से योग है, अतः सवर्ण न् अनुनासिक हुआ। स्थान तथा प्रयत्नो से सदृशतम स्पर्श (क से लेकर म तक २५) वर्णों मे लब्धावकाश (कृतकृत्य) यह अनुनासिक-विधि चतुर्× मुख इस स्थिति मे रेफ को अनुनासिक णकार नही करेगी।

तन्मात्रम्, चिन्मयम्—'प्रत्यये भाषाया नित्यम्' वा० लौकिक प्रयोग में अनुनासिक प्रत्यय (मात्रच्-मयट्) आगे रहने पर नित्य ही अनुनासिक होगा।

कथं तर्हि 'मदोदग्राः ककुद्मन्तः' इति ?—'मदोदग्राः ककुद्मन्त' (रघु०) यहाँ तो

यवादि गण मे दकारान्त 'ककुद्' का निपात होने के कारण द् को अनुना-
सिक नहीं हुआ, अन्यथा नकारान्त का ही निपात करते ।

तल्लय. विद्वाँल्लिखति—'तोर्लि' तवर्ग को लकार पर मे रहने पर परसवर्ण आदेश होगा । परवर्ण लकार का सवर्ण लकार ही है, दूसरा नही । विद्वान् × लिखति मे नकार को अनुनासिक (यवला द्विधा) लकार ही होगा ।

उत्थानम्, उत्तम्भनम्—'उदः स्थास्तम्भोः पूर्वस्य' उद् से परे रहनेवाले स्था और स्तम्भु को पूर्वसवर्ण होगा । 'आदेः परस्य' से पर के आदि भाग सकार को पूर्व (त्) का सवर्ण, अघोष महाप्राण सकार को उसी प्रकार का थ होगा । 'झरो झरि०' से पाक्षिक लोप । लोपाभाव के पक्ष मे उत्थ्थानम् 'खरि च' इसकी दृष्टि से थकार (उद. स्था०से विहित) असिद्ध है ।

वाग्घरिः, वाग्हरिः—'झयो होऽन्यतरस्याम्' झय् के पर मे रहनेवाले हकार को विकल्प से पूर्वसवर्ण होगा । घोष नादवाले महाप्राण-सवृतकण्ठ हकार को उक्तगुण वाला वर्ग चतुर्थ घ हुआ ।

तच्छिवः, तच्शिवः, तच्छ्लोकेन, तच्श्लोकेन, अमि किम्? वाक्श्च्योतति—'शश्छोऽटि' पदान्त झय् से पर मे रहनेवाले शकार को (उससे आगे) अट् परे रहते छ विकल्प से होगा । तद् × शिव. इस स्थिति मे श्चुत्व से दकार को ज होनेपर 'खरि च' झल् को चर् होगा खर् परे रहनेपर-से ज को च हुआ । 'छत्वममीति वाच्यम्' वा० तच् × श्लोकेन यहाँ भी छ हो इसलिये सूत्र मे अट् के स्थान मे अम् कहना चाहिए । वाक् × श्च्योतति इस स्थिति मे अम् से अतिरिक्त च आगे होने से छत्व न होगा ।

हरिं वन्दे, पदस्येति किम्? गम्यते—'मोऽनुस्वार.' मकारान्त पद (हरिम्) का अनुस्वार होगा हल् परे रहते । पद न होने से गम्यते के म को अनुस्वार न हुआ ।

यशांसि, आक्रंस्यते, झलि किम्? मन्यते-गम्यते—'नश्चापदान्तस्य झलि' अपदान्त न तथा म को झल् परे रहते अनुस्वार होगा । आगे झल् न होने से इन दो—मन्यते–गम्यते स्थानो मे अनुस्वार न होगा ।

अङ्कितः, अञ्चितः, कुण्ठितः, शान्तः, गुम्फितः । कुर्वन्ति—'अनुस्वारस्य ययि

परसवर्णः' अनुस्वार को परसवर्ण होगा यय् परे रहते–से तत्तद्वर्ग का ५वा अक्षर हुआ। कुर्वन्ति यहाँ के न-कारको 'रषाभ्या नो णः समानपदे' से प्रकृत अनुस्वार को बाधकर ण-कार के प्राप्त होने पर 'रषाभ्या' से परसवर्ण ('अनुस्वारस्य०') के पर होने से णत्व प्रवृत्ति के अवसर पर अनुस्वारस्थानापन्न न-कार के असिद्ध होने के कारण णत्व नही होगा।

त्वङ्करोषि-त्वं करोषि, सँय्यन्ता-संयन्ता, सँव्वत्सरः-संवत्सरः, यँल्लोकम् यं लोकम्— 'वा पदान्तस्य' पदान्त अनुस्वार को यय् परे रहने पर परसवर्ण विकल्प से होगा। अनुस्वार को य-व-ल परे रहते विकल्प से अनुनासिक य व ल होगे।

सम्राट्—'मो राजि समः क्वौ' क्विप्प्रत्ययान्त राजति पर मे रहने पर सम् के मकार को म ही होगा (अर्थात् 'मोऽनुस्वारः' से अनुस्वार न होगा)।

किम् ह्मलयति–किं ह्मलयति—'हे मपरे वा' म को पर मे रखनेवाले हकार पर मे रहने पर म् को म् ही विकल्प से होगा।

कि यँ् ह्यः-किं ह्यः, किँ ह्वलयति-किं ह्वलयति, किलँ् ह्लादयति-किंह्लादयति—'यवलपरे यवला वेति वक्तव्यम्' वा० य व ल पर मे रहनेवाले हकार पर मे होने पर म् को विकल्प से अनुनासिक य्-व्-ल् होगे। 'यथासख्यमनुदेशः समानाम्' उद्देश्य और विधेय समसख्याक हो तो विधि उद्देश्य-संख्या नियम से ही होगी। (अर्थात् ३ उद्देश्य ३ विधेय हो तब क्रम से १–१, २–२, ३–३, विधि है)।

किन्ह्नुते-किं ह्नुते—'नपरे नः' नकार को पर मे रखनेवाले हकार पर मे रहने पर मकार को विकल्प से नकार होगा, पक्ष मे 'मोऽनुस्वारः'।

प्राङ्ख्षष्ठः, प्राङ्क्षष्ठः, प्राङ्षष्ठः, सुगण्ठ्षष्ठः, सुगण्ट्षष्ठः, सुगणषष्ठः—'ङ्णोः कुक्–टुक् शरि' ङकार णकारको कुक्–टुक् आगम विकल्प से होता है शर् परे रहते। कुक्–टुक् (क्–ट्) के असिद्ध होने से जश्त्व न होगा। (अर्थात् दोनों शास्त्र त्रैपादिक है, उनमे कुक्–टुक् शास्त्र पर है, अतः जश्त्व करने के समय क्–ट् नही रहेगे) 'चयो द्वितीयाः शरि पौष्करसादेरिति वाच्यम्' वा० अर्थात् पाचो वर्गों के प्रथम अक्षरो को तत्तद्वर्ग के द्वितीय अक्षर पौष्करसादि आचार्य के मत से होगे। ख्-ठ् वा क्-ट् विकल्प से हुये।

षट्त्सन्तः, षट्सन्तः—'डः सि धुट्' ड (चर्त्व-ट्) से पर मे रहनेवाले सकार को विकल्प से धुट्(ध्) आगम हो। टित् होने से सन्तः के आद्यवयव हुआ, चर्त्व से त् हो गया।

सन्त्सः, सन्सः—'नश्च' नकारान्त से पर मे रहने वाले सकार को धुट् विकल्प से होगा। पूर्ववत् प्रक्रिया।

सञ्छम्भुः, सञ्च्छम्भुः, सञ्च्शम्भुः, सञ्शम्भुः—'शि तुक्' पदान्त नकार को शकार परे रहते विकल्प से तुक् (त्) का आगम होगा। 'शश्छोऽटि' से विकल्प से छ होगा। पक्ष मे 'झरो झरि सवर्णे' से तुक् वाले त्–जो श्चुत्व से च बना है–उसका लोप, सर्वत्र न् को श्चुत्व, तुक् छ-च लोप विकल्प।

> 'अछौ अचछा अचशा अशाविति चतुष्टयम्।
> रूपाणामिह तुक्छत्वचलोपाना विकल्पनात् ॥'

इस प्रकार चार रूप बनते है।

प्रत्यङ्ङात्मा, सुगण्णीशः, सन्नच्युतः—'ङमो ह्रस्वादचि ङमुण्नित्यम्' ह्रस्व से पर मे रहनेवाला जो ङम् वह अन्त में है जिस पद का उस से पर मे रहने वाले अच् को ङमुडागम (ङ् ण् न्) नित्य होगा।

सँस्स्कर्ता-संस्स्कर्ता—'समः सुटि' सम् को रु होगा सुट् आगे रहने पर। 'अलो०' से म् को रु होगा, 'अत्रानुनासिकः पूर्वस्य तु वा' इस रु प्रकरण मे रु से पूर्व को अनुनासिक विकल्प से होगा। 'अनुनासिकात्परोऽनुस्वारः' अनुनासिक के न होने पर रु से पूर्व से पर मे अनुस्वार का आगम होगा। सर् ✕ स्कर्ता इस स्थिति मे रेफ से पूर्व जो स है उसके पर मे अनुस्वार (संर् ✕ स्कर्ता) होगा। 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से रेफ को विसर्ग होगा। 'विसर्जनीयस्य सः' खर् पर मे रहते विसर्ग को स होगा। इसके अपवाद 'वा शरि' से विसर्ग विकल्प होगा। इस सूत्र से पाक्षिक विसर्ग के आने पर–'संपुंकाना सो वक्तव्यः' वा० सम् पुम् कान् इनके विसर्ग को सकार होगा। 'समो वा लोपमेके' इस भाष्य के अनुसार सम् के मकार को लोप विकल्प से होगा। लोप का भी रुप्रकरणस्थ होने से अनुस्वार–अनुनासिको से एक सकारवाला २ रूप। रुत्वपक्ष मे २ सकारवाला। वहाँ भी 'अनचि च' से सकार द्वित्व होने पर ३ सकारवाला २ रूप। अनुस्वार से पर मे

रहनेवाले सकार को द्वित्व 'अनचि च' से। अनुनासिकवाले १-२-३ सकारवाले रूपो मे 'शरः खयः' से खय् (क-कार) का द्वित्व होने पर ६ रूप (अनुस्वारवाले रूपों मे अनुस्वार का भी द्वित्व होने पर १२। २ अनुस्वार-३, १ अनुस्वार ३, इन ६ का क द्वित्व से १२। अनुनासिकपक्षे ६।) इस प्रकार १८ का तद्वित्व होने पर (अचो रहाभ्या द्वे से) प्रथम तकार को 'यणो मयो द्वे वाच्थे' से पुनः द्वित्व होने पर १ त, २त, ३त, ५४। 'अणोऽप्रगृ'-से तकारोत्तरवर्ति आकार की अनुनासिकता के विकल्प से १०८ रूप होगे।

पुँस्कोकिल-पुंस्कोकिलः, **पुँस्पुत्र**-पुंस्पुत्रः—'पुम खय्यम्परे' अम् परवाला खय् परे रहते पुम् को रु होगा। अनुनासिकादि। 'सम्पुम्'-से स।

पुंक्षीरम्—'अम् परवाला खय्' कहने से 'क्षीरं' मे क-रूप खय् अम् परवाला (ष-अम् मे नही) नही, रु न हुआ। 'मोऽनुस्वारः' से अनुस्वार।

पुंदासः—'खय् परे'—कहने से यहाँ रु न हुआ, अनुस्वार, द खय् नहीं।

पुंख्यानम्—'ख्याञादेशे न' वा० ख्याञ् आदेश ('चक्षिङः ख्याञ्')पर मे रहते पुम् के म को रु नहीं। अनुस्वार।

शार्ङ्गिँश्छिन्धि, शार्ङ्गिंश्छिन्धि, चक्रिँस्त्रायस्व, चक्रिँस्त्रायस्व।

'नश्छव्यप्रशान्' अम् परवाला छव् परमे रहते नकारान्त पद को रु होगा, प्रशान्-शब्द को रु नहीं-से शार्ङ्गिन्-चक्रिन् के न को रु, अनुनासिक अथवा अनुस्वार, रु को विसर्ग, विसर्ग को स, स को श्चुत्व से शकार। 'चक्रिन्'-मे श्चुत्व मात्र नहीं।

हन्ति— पद को' कहने से हन्ति के न को रु नही हुआ। 'हन्' पद नही।

सन्त्सरुः—'अम् परवाला छव्' पर मे न होने से 'सन्' के न को रु नही। त्सरु—खड्ग की मूठ।

प्रशान्तनोति—सूत्र मे 'अप्रशान्' कहने से प्रशान् के न को रु नही।

नॄँ ≍ पाहि-नॄ ≍ पाहि, नॄँः पाहि,-नॄं. पाहि, नॄन्पाहि—'नॄन्पे' नॄन् के न को रु विकल्प से होगा पकार परे रहते। रु, अनुनासिक अथवा अनुस्वार, 'खरवसा'-से रेफ को विसर्ग, 'कुप्वो≍क≍पौ च' कवर्ग तथा पवर्ग

(कख, पफ) परे रहते विसर्ग को क्रम से जिह्वामूलीय तथा उपध्मानीय(✕) होगे सूत्र मे 'च' कहने से विसर्ग भी।

वासः क्षौमम्—'कुप्वोः'—यह विधि इस विसर्ग को 'विसर्जनी'—से सत्वविधि का ही अपवाद है, न कि 'शर्परे विसर्जनीयः' से विधीयमान (उदाहरण मे के) विसर्ग का, यत 'येन नाप्राप्ते यो विधिरारभ्यते स तस्यापवादः' जिसकी अवश्य प्राप्ति मे जो प्रारभ किया जाता है वह उसीका बाधक है—प्रकृत स की प्राप्ति मे 'कुप्वोः'—स को ही बाधता है।

काँस्कान् कांस्कान् कस्कः कौतस्कुतः सर्पिष्कुण्डिका धनुष्कपालम्—'कानाम्रेडिते' कान् के नकार को रु होगा आम्रेडित (तस्य परमाम्रेडित) परे रहते—से न को रु, 'सम्पुकाना' से रु को स, अथवा 'कस्कादिषु च' कस्कादि गण मे इण् से पर मे विसर्ग को ष, तथा अकार से परे विसर्ग को स होगा—से स—ष। कस्कादि आकृति गण है। विकल्प से अनुनासिकानुस्वार।

स्वच्छाया, शिवच्छाया—'छे च' ह्रस्व को छकार परे रहते तुक् आगम हो संहिता (परः सनिकर्षः) मे—से तुक्, कित् अन्तावयव, श्चुत्व इसकी दृष्टि से असिद्ध (८-४-४०) है, अतः जश्त्व से द अनन्तर 'खरि च' असिद्ध होने से पूर्व मे श्चुत्व से ज, ज को चर्त्व से च। श्चुत्व असिद्ध होने से 'चोः कुः' से कुत्व नहीं।

आच्छादयति, माच्छिदत्—'आङ्माङोश्च' आङ् तथा माङ् (आ-मा) को छ परे रहते तुक् होगा। 'पदान्ताद्वा' से विकल्प का यह अपवाद है। पूर्ववत् जश्त्वादि।

चेच्छिद्यते—'दीर्घात्' दीर्घ से छ परे रहने तुक् होगा। यह दीर्घ का ही होगा, 'सेनासुराच्छाया—ही ज्ञापक है, सूत्र ही मे छ को तुक् होता तो छ को 'खरि च' से चर्त्व होकर 'चाया' बन जाता।

लक्ष्मीच्छाया—लक्ष्मीछाया—'पदान्ताद्वा' दीर्घ पदान्त से छ परे रहते विकल्प से तुक् होगा। जश्त्वादि पूर्ववत्। **इति हल्संधि ॥ अथ विसर्गसन्धि।**

विष्णुस्त्राता—विष्णु—सु, 'ससजु'—से रु, 'खरवसा'—से विसर्ग, 'विसर्जनीयस्य सः' से स।

कः त्सरुः, 'घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम्'—'शर्परे विसर्जनीयः' शर् को पर मे रखने वाले खर् परे रहते विसर्ग को विसर्ग ही होगा। दोनो स्थान मे त्स–क्ष शर्परक खर है। सत्व तथा जिह्वामूलीय (क्रम से) नही।

हरि शेते हरिश्शेते—'वा शरि' शर् परे रहते विसर्ग को विसर्ग ही विकल्प से होगा–पक्ष मे विसर्ग को 'विसर्जनी'–से स, श्चुत्व।

राम स्थाता, रामः स्थाता, हरि स्फुरति, हरिः स्फुरति—'खर्परे शरि वा विसर्गलोपो वक्तव्य.' वा० खर् को पर मे रखने वाले शर् परे रहने विकल्प से विसर्गलोप होगा। 'स्था स्फु' खर्परक शर् हैं। लोपाभावपक्ष मे 'वा शरि' से विसर्ग करने पर सविसर्ग एक सकार वाला, विसर्ग को स होने (विसर्जनीयस्य सः) पर दो सकार वाला–इस प्रकार ३ रूप होते है।

कः ᳵकरोति कः करोति, क ᳵखनति कः खनति, क ᳵपचति कः पचति, कः ᳵफलति कः फलति—'कुप्वोᳵकᳵपौच' से जिह्वामूलीयोपध्मानीय तथा 'च' से पाक्षिक विसर्ग है।

पयस्पाशम् यशस्कल्पम् यशस्कम् यशस्काम्यति—'सोऽपदादौ' विसर्ग को स होगा अपदादि क–पवर्ग परे रहते, 'पाश-कल्प-क–काम्येष्विति वाच्यम्' वा० ये चार परे रहते स होगा। पाश–क निन्दार्थक है। ईषद् असमाप्त मे कल्पप् है। काम्यच् कृत् है।

प्रातः कल्पम्—'अनव्ययस्येति वाच्यम्' वा० स अव्यय के विसर्ग को न होगा। प्रातर् अव्यय है।

गीः काम्यति—'काम्ये रोरेवेति वाच्यम्' वा० काम्य प्रत्यय परे रहते रु–स्थानिक विसर्ग को ही स होगा। यहाँ गृ धातु को इत्व–रपर जो हुआ है उस रेफ का विसर्ग है।

सर्पिष्पाशम् सर्पिष्कल्पम् सर्पिष्कम् सर्पिष्काम्यति—'इणः ष' इण् से परे विसर्ग को उपर्युक्त विषय मे ष होगा। स नहीं।

नमस्करोति, नम ᳵकरोति, नमः करोति। पुरस्करोति—'नमस्पुरसोर्गत्योः' गति संज्ञक नमस् पुरस् के विसर्ग को कवर्ग पवर्ग परे रहते स होगा। 'साक्षात्प्रभृतीनि च' 'विभाषा कृञि' कृ के योग मे नमस् विकल्प से गति है। पक्ष मे जिह्वामूलीय। 'पुरोऽव्ययम्' से पुरस् को नित्य गतिसंज्ञा है।

पूः पुरौ पुरः प्रवेष्टव्याः—गति नही है, विसर्ग को स न हुआ।

निष्प्रत्यूहम् आविष्कृतम् दुष्कृतम्—'इदुदुपधस्य चाप्रत्ययस्य' इ उ उपध (अलोऽन्त्यापूर्व उपधा) वाले प्रत्यय भिन्न विसर्ग को ष होगा।

अग्निः करोति, वायुः करोति,—'अप्रत्ययस्य' कहने से सुप्रत्ययवाले विसर्ग को ष नही।

मातुः कृपा—'एकादेशशास्त्रनिमित्तकस्य न षत्वम्,' (कस्कादिषु भ्रातुष्पुत्रस्य पाठात्) वा० एकादेश वाले के विसर्ग को ष न हो—'ऋत उत्' से उ ऋ तथा अ के स्थान मे एकादेश है। अन्यथा 'भ्रातुष्पुत्र' शब्द को कस्कादि गण मे षत्व के लिये नही पढते, 'इदुद'–से ही ष हो जाता।

मुहुः कामा –'मुहुस प्रतिषेधः' से ष का निषेध हो जाता है।

तिरस्कर्ता तिरः कर्ता—'तिरसोऽन्यतरस्याम्' तिरस् के विसर्ग को स विकल्प से होगा क–प वर्ग परे रहते।

द्विष्करोति-द्विः करोति—'द्विस्त्रिश्चतुरिति कृत्वोऽर्थे' कृत्वोऽर्थ (१बार २बार आदि) मे विद्यमान द्वि-त्रि-चतुर् के विसर्ग को ष विकल्प से होगा।

चतुष्कपालः—'कृत्वोऽर्थे' कहने से यहाँ विकल्प न होकर 'इदुदु-' से नित्य ष।

सर्पिष्करोति सर्पिः करोति, धनुष्करोति धनुः करोति—'इसुसोः सामर्थ्ये' इस् उस् के विसर्ग को ष विकल्प से होगा अपेक्षा मे।

तिष्ठतु सर्पिः, पिब त्वमुदकम्—'सामर्थ्ये' (अपेक्षा मे) कहने से यहाँ सर्पि को पिब की अपेक्षा न होने से ष न हुआ।

सर्पिष्कुण्डिका धनुष्कपालं—'नित्य समासेऽनुत्तरपदस्थस्य' अनुत्तर पदवाले इस् उस् सम्बन्धी विसर्ग को समास मे नित्य ष होगा।

परमसर्पिःकुण्डिका—अनुरपदस्थ–कहने से यहाँ उत्तरपदस्थ विसर्ग को ष नहीं।

अयस्कारः, अयस्कामः, अयस्कंसः, अयस्कुम्भः, अयस्पात्रम्, अयस्सहिता कुशा-अयस्कुशा, अयस्कर्णी—'अतः कृकमिकंसकुम्भपात्रकुशाकर्णीष्वनव्ययस्य' अकार से पर मे रहने वाले अव्यय से भिन्न, उत्तरपदस्थ न हो–ऐसे विसर्ग को समास मे नित्य ही सकारादेश होगा कृ–कमि–कंस–कुम्भ–पात्र–कुशा–कर्णी शब्द पर मे रहने पर।

गीःकारः—सूत्र मे 'अतः' कहने से कु का रूप आगे होने पर भी स न हुआ।

स्वः कामः—'अनव्ययस्य' से यहा (स्व अव्यय है) स नही।

यशः करोति—'समास मे' कहने से यहाँ स न हुआ।

परमयशःकारः—उत्तर पदस्थ न हो—कथन से प्रकृत विसर्ग को स नहीं।

अधस्पदम्, शिरस्पदम्—'अधशिशरसी पदे' अध और शिर शब्दो के विसर्ग को स होगा पद-शब्द पर मे रहने पर।

अधः पदम्, शिरः पदम्—उक्तसूत्र मे भी समास मे ही सत्व-विधि है, अतः यहाँ स न हुआ।

परमशिरः पदम्—अनुत्तरपदस्थ विसर्ग ही को स है; न कि उत्तरपदस्थ को।

भास्करः—'अतः कृ' सूत्र से ('अतः' से तपरग्रहण है) स न होने के कारण इस शब्द को कस्कादि गण मे पाठ किया गया। इति विसर्गसन्धि।

शिवोऽर्च्य—'स्वौजस' इत्यादि से सु-प्रत्यय लाने पर 'शिवस् अर्च्यः' स्थिति मे 'ससजुषो रुः' पदान्त स को एव सजुष् शब्द को भी रु होगा। 'झला' से जश्त्व का अपवाद है। 'अतो रोरप्लुतादप्लुते' प्लुत से भिन्न अत् (तपरग्रहण) से परे रहने वाले रु को उ होगा प्लुत से अतिरिक्त ह्रस्व अकार पर मे रहने पर। ('भोभगो' से प्राप्त यत्व का अपवाद है) रुत्व को उद्देश्य बनाकर उत्व की विधि-सामर्थ्य से उत्व के प्रति रुत्व की असिद्धि (त्रैपादिक होने से) नही होती। शिव उ अर्च्य बनने पर 'प्रथमयोः पूर्वसवर्णः' अक् को प्रथमाद्वितीया सम्बन्धि अच् पर रहते पूर्वसवर्ण दीर्घ एकादेश होगा-की प्राप्ति मे 'नादिचि' अवर्ण से इच् परे रहते पूर्वसवर्ण दीर्घ न होगा। 'आद्गुणः' से गुण-ओ करने पर 'एङ. पदान्ता'-से पूर्वरूप।

देवा अत्र—'अता रो' मे तपरग्रहण होने से उ न हुआ, किन्तु 'भोभगो' से यत्व, 'लोपः शाक'-से यलोप।

श्व आगन्ता—'अति' मे तपर होने से उत्व नही, वही यत्व-यलोप।

एहि सुस्रोत ३ अत्र स्नाहि—सुस्रोतस् सान्त शब्द है, 'दूराद्धू' से विधीयमान प्लुत के असिद्ध (त्रैपादिक) होने से रु (सुस्रोतस् के स-स्थानिक) अत् से परे है, 'अप्लुतात्' विशेषण सामर्थ्य से अब प्लुत की असिद्धि नही मानी जायगी। तपरग्रहण दीर्घ को हटाकर ही शान्त हो जाता है, प्लुत को नहीं हटाता।

विष्ठतु पय अ३ ग्निदत्त—'अप्लुते' न कहने पर पयस् के स को रु होने के बाद उस रु को उ हो जाता, यहा 'गुरोरनृतो' से अकार प्लुत है।

शिवो वन्द्यः—'हशि च' अप्लुत अत् से पर मे रहनेवाले रु को उ होगा हश् पर मे रहने पर–शिवस्-के स को रु, उ, गुण।

प्रातरत्र, भ्रातर्गच्छ—रु मे उ–अनुबन्ध (इत्) विशिष्ट का ग्रहण होने के कारण इन दोनो रेफो (प्रातर्–भ्रातर्) को उ नही।

देवा इह, देवायिह—'देवास् इह' स्थिति मे स् को 'ससे'–से रुत्व, 'भोभगो-अघोअपूर्वस्य योऽशि' भो–भगो–अघो–अ पूर्ववाले रु को य आदेश होगा अश् पर मे रहते। लोपश्शा'–से विकल्प से यका लोप।

देवास्सन्ति—'अशि' कहने से यहाँ देवास् के स के रु को य न हुआ। किन्तु विसर्ग वा सत्व। (यद्यपि यहाँ यत्व असिद्ध होने से 'खरव'–से विसर्ग हो जाता है, अत 'अश्' कहने की आवश्यकता नही, तथाऽपि उस विसर्ग को स्थानिवद्भाव से रु मानकर यत्व हो ही जायगा। यह अल्विधि नही है, उकारविशिष्ट रेफ समुदाय का ग्रहण होने से स्थानिवद्भाव होगा ही)।

भो अच्युत भोयच्युत—भोस् भगोस् अघोस्–सकारान्त निपात है, स को रु, रु को य करने पर 'व्योर्लघुप्रयत्नतरः शाकटायनस्य' पदान्त वकार–यकारो को लघूच्चारण व–य विकल्प से होगे अश् परे रहते। जिसके उच्चारण मे जीभ के अग्रभाग मध्य एवं मूल आदि ढीले हो जाते है वे लघूच्चारण है। 'ओतो गार्ग्यस्य' ओकार से परे पदान्त अलघुप्रयत्नवाले यकार का नित्य ही लोप होगा। अलघु पक्ष मे य-लोप। लघुप्रयत्न पक्ष मे यकार घटित।

तोयम्—'पदान्त' कहने से यहाँ के य का लोप नही।

स उ एकाग्निः—'उञि च पदे' अ–से परमे रहने वाले पदान्त यकार वकार का लोप होगा उञ् परमे रहने पर। सस् × उ, सरु × उ, सय् × उ, स उ, ('ससजुषो रुः' 'भोभगो अघो अपूर्वस्य')।

तन्त्रयुतम्—सूत्र मे 'पदे' कहने से 'तन्त्रे × उतं' को अय् आदेश, यहाँ य का लोप न होगा। 'उत' वेञ् धातुका 'वचिस्वपि' से सम्प्रसारण उ होने पर

बना हुआ रूप है। यदि प्रतिपदोक्त चादि पठित उञ् ही का ग्रहण अभीष्ट है तो 'पद' ङमो ह्रस्वात्-सूत्र के लिये है।

भो देवाः, भो लक्ष्मि, भो विद्वद्वृन्द, भगो मनस्ते, अघो याहि, देवा नम्या',

देवा यान्ति—'हलि सर्वेषाम्' भो-भगो-अघो तथा अकार से परमे स्थित लघूच्चारण व अलघूच्चारण यकार का लोप होगा हल् परे रहते सभी आचार्यों के मत से। 'भो भगो' से रु के स्थानापन्न य का इससे लोप हुआ।

देवायिह, देवा इह—हल् परे रहते-कहने से यहाँ नित्य य-लोप न हुआ। किन्तु 'लोपः शाक'-से पाक्षिक लोप हुआ।

अहरहः, अहर्गणः—'रोऽसुपि' अहन् को रेफादेश होगा सुप् आगे न रहने पर। 'अहन्' से विधीयमान रु का अपवाद है। 'नित्यवीप्सयोः' से द्वित्व, अहन् अहन्, रत्व, 'स्वमोर्नपुंसकात्' से सु-लुक् द्वितीय न् को 'अहन्' से रुत्व, 'खरवसा' से विसर्ग। 'अह्ना गणः' अहन् ('सुपो धातु' से लुक्) के न को रत्व।

अहोभ्याम्—'असुपि' कहने से यहाँ रेफ न होकर 'अहन्' से रुत्व, 'हशि च' से उत्व, गुण।

अहोरूपम्, गतमहो रात्रिरेषा—'रूपरात्रिरथन्तरेषु रुत्व वाच्यम्' अहन् को रुत्व होगा रूप-रात्रि-रथन्तर परे रहते-से रुत्व, उत्व-गुण पूर्ववत्।

अहोरात्रः अहोरथन्तरम्—एकदेशविकृत (रात्रि)होने पर भी अभिन्नता मानकर रुत्व, उत्व गुण। रथन्तर = सामविशेष है।

अहर्पतिः गीर्पतिः धूर्पतिः—'अहरादीना पत्यादिषु वा रेफः' वा० से विकल्प से रेफ, पक्ष मे 'कुप्वोः' से विसर्ग-उपध्मानीय।

पुना रमते, हरी रम्य, शम्भू राजते—'रो रि' रेफ का रेफ परे रहते लोप होगा-से 'पुनर् हरिर् शम्भुर्' का रेफ लोप, 'ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः' ढ-र को लोप करने वाले (ढ-र) अक्षर परे रहते पूर्व अण् को दीर्घ होगा-से तीनों स्थलो मे दीर्घ।

तृढः, वृढः—'अणः' कथन से 'तृढ्-ढः, वृढ्-ढः' यहाँ ऋ को दीर्घ नही। (तृहू-वृहू धातु हिंसा-उद्यम अर्थवाली है, उससे 'क्त' करने पर 'हो ढः' से

ढत्व, 'झषस्त'-से त को ध, ध को ष्टुत्व से ढ, 'ढो ढे' से पूर्व ढका लोप करने पर ये रूप बनते है।)

अजर्घाः, लीढः—'पूर्व' कहना उत्तर पद न होने पर भी पूर्वमात्र को दीर्घार्थ है। (गृधु अभिकाङ्क्षायाम् के यङ् लुगन्त लङ् के म० पु० ए० व०।) यहाँ अजर्घर् र् स्थिति मे 'रोरि' से पूर्व रेफ लोप होने पर दीर्घ हुआ, २रा 'लिह् आस्वादने' के क्त प्रत्यय का रूप है।

मनोरथः—मनस् रथः-यहाँ 'सस'-से रु, तदनन्तर 'हशि च' से उ तथा 'रो रि' से रेफ लोप की भी प्राप्ति होने पर 'विप्रतिषेधे पर कार्यम्' समबल वाले शास्त्रो मे विरोध आने पर, बाद के शास्त्र का कार्य होना चाहिये-से र-लोप प्राप्त होने पर 'पूर्वत्रासिद्ध' से 'रो रि' (८-३-१४) के असिद्ध होने से उत्व तथा गुण हुआ।

एष विष्णुः, स शम्भुः—'एतत्तदोः सुलोपोऽकोऽनञ्समासे हलि' ककार रहित एतद्-तत् शब्दों का जो 'सु' उसका लोप होगा हल् पर मे रहने पर, किन्तु नञ्-समास मे नही—से दोनो स्थलो मे सु का लोप हुआ।

एषको रुद्रः—'अकोः' से ककारयुक्त एतत् के सु-लोप न होकर 'सस'-से रु, 'हशि च' से उत्व, गुण।

असशिवः—'अनञ्समासे' इस निषेध के कारण स् को 'स्तोः'-से श्चुत्व हुआ।

एषोऽत्र—'हलि' से अच् आगे रहने पर लोप न हुआ, रुत्व 'अतो रो'-से उत्व, गुण तथा पूर्वरूप हुआ।

सेमामविड्ढि—'सोऽचि लोपे चेत्पादपूरणम्' सस्-शब्द के सु का लोप होगा अच् परे रहते यदि लोप होने पर ही पाद पूर्ण होता हो-से सु का लोप होकर स-इमाम मे गुण हुआ।

सैष दाशरथी रामः—यहाँ भी सु-लोप होकर स-एष मे वृद्धि हुई।

स इत्वेति, स एवमुक्त्वा—'लोपे चेत्' कथन से पादपूरणार्थ यहाँ लोप अनपेक्षित होने से सन्धि न हुई। यहाँ तो सु को रुत्व, 'भोभगो'-से यत्व, 'लोपः शा-' से य-लोप हुआ।

'सोऽहमाजन्म-शुद्धानां'—'लोप होने पर ही' इस अवधारण के कारण यहाँ तत्-

शब्द का सुलोप न होकर सु का रुत्व 'अतोरो' से उत्व, 'आद्'-से गुण 'एङ.'-से पूर्वरूप हुआ। **पञ्चसन्धि समाप्त।**

अजन्त पुंल्लिङ्ग

रामः—राम-शब्द अनेकार्थक है 'गन्धर्व शरभो रामः' अमर से पशुविशेष का वाचक राम शब्द अवयवार्थ (अव्युत्पन्न) रहित है। तत्र 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' धातु-प्रत्यय-प्रत्ययान्त वर्जित तथा अर्थवान् शब्द प्रातिपदिक कहाता है-से प्रातिपदिकसञ्ज्ञा, ततश्च सुबुत्पत्ति। जब कि 'रमन्ते योगिनोऽस्मिन्निति' अर्थ मे अधिकरण मे घञ् करने पर-'कृत्तद्धितसमासाश्च' कृदन्त तद्धितान्त और समास भी प्रातिपदिक है-से प्रातिपदिक संज्ञा। प्रातिपदिक राम शब्द से प्रथमा एकवचन की विवक्षा मे राम-सु इस स्थिति मे 'उपदेशेऽज'-से उ की इत्सञ्ज्ञा 'तस्य लोपः' से लोप, स् को 'ससजु'-से रुत्व, 'खरवसा'-से विसर्ग।

रामौ—राम शब्द से प्र० द्वि० व० की विवक्षा मे 'राम राम औ' इस अवस्था मे 'सरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ' एक विभक्ति मे जो समान रूप अनेक है उन मे से एक ही वचेगा-से 'राम औ' बनने पर 'प्रथमयोः पूर्वसवर्णः' अक् को प्रथमा द्वितीया सम्बधि अच् परे रहते पूर्वसवर्णदीर्घ एकादेश होगा-की प्राप्ति होने पर, 'नादिचि' अवर्ण से इच् परे रहते पूर्वसवर्ण दीर्घ न होगा-से निषेध, 'वृद्धिरेचि' से वृद्धि।

रामाः—राम शब्द से प्र० ब० व०, राम-जस्, 'चुटू' प्रत्यय के आदि के च-ट-वर्ग इत् होते है-से ज की इत्सञ्ज्ञा-लोप, 'न विभक्तौ तुस्माः' विभक्ति स्थित तवर्ग स तथा म इत् नही होते है-से स् को 'हलन्त्य' से इत्त्व नही, 'राम-अस्' इस स्थिति मे 'अतो गुणे' यह शास्त्र 'पुरस्तादपवादा अनन्तरान् विधीन् बाधन्ते नोत्तरान्' परिभाषा-पहला अपवाद अव्यवहित आगे की विधियो का बाधक है, न कि उस से भी आगे का-से 'अकः सव'-का ही बाधक है, न कि 'प्रथमयोः'-का। अतः-पूर्वसवर्णदीर्घ, स् का रुत्व-विसर्ग।

हे राम! हे रामौ हे रामाः—'एकवचनं सम्बुद्धिः' प्रथमा के एकवचन को सम्बोधन कहते है-'एङ् ह्रस्वात् सम्बुद्धेः' एङन्त तथा ह्रस्वान्त अङ्ग से

परे हल् का लोप होता है, यदि वह सम्बुद्धि सम्बन्धी हो, से 'रामस्' मे स् का लोप। और २ वचन पूर्ववत् है।

हे कतरत् (कुल)—एडन्त और ह्रस्वान्त-ये दोनो ('सम्बुद्धि' से आक्षिप्त) अंग का विशेषण हैं, अतः यहाँ कतर् शब्द से सुको 'अद्ड् डतरादि०' से 'अत्' आदेश विहित हुआ है। ह्रस्वान्त अग से आदेश न होने से त्-का लोप न होगा।

हे हरे, हे विष्णो,—'एङन्त' न कहने से यहाँ पर, पर और नित्य होने से 'ह्रस्वस्य गुणः' से गुण (ए-ओ) करने पर ह्रस्व से 'सु' पर न रहा तो उसका लोप न होता।

रामम्—द्वितीयैकवचन मे 'राम-अम्' इस स्थिति मे 'अमि पूर्वः' अक् से अम् सम्बन्धि अच् परे रहते पूर्वरूप एकादेश होगा-से पूर्व (म-मे-के अ-का) रूप होगा।

रामौ रामान्—द्वि०ब०वचन मे राम-शस् इस अवस्था मे लशक्वतद्धिते' तद्धित से अतिरिक्त प्रत्ययों की आदि मे रहने वाले ल-श-कवर्ग इत् (लोप होने वाले) होते है। राम-अस् बनने पर 'प्रथमयोः' से पूर्वसवर्ण दीर्घ, 'तस्माच्छसो नः पुंसि' पूर्वसवर्ण दीर्घ करने पर जो शस् का स उसको न होगा-से न्, 'अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि' अट् कवर्ग पवर्ग आङ् नुम् इन -जो कि व्यस्त (पृथक्-पृथक) तथा यथासम्भव सम्मिलित-से व्यवधान (रुकावट) होने पर भी र-ष से पर मे स्थित न को ण होगा-से णत्व प्राप्त होने पर 'पदान्तस्य' पदान्त न को ण न होगा-से निषेध।

रामेण—'यस्मात्प्रत्ययविधिस्तदादि प्रत्ययेऽङ्गम्' जो प्रत्यय जिससे विधीयमान हो तदादि (वह आदि है जिसका) शब्द स्वरूप उस प्रत्यय आगे रहने पर 'अंग' कहाता है। विकरणविशिष्ट (भव-भविष्य) की भी 'अङ्ग' संज्ञा के लिये 'तदादि' कहा। 'स्त्री इयती' यहाँ स्त्री शब्द से 'इयत्' प्रत्यय परे रहते 'स्त्रियाः' से अङ्गकार्य 'इयङ्' न हो—इस लिये 'विधि' कहा, अब तो 'इदम्' को 'किमिद-' से वतुप् का विधान है। प्रत्ययविशिष्ट अथवा उससे भी अधिक की अङ्ग सज्ञा न हो इसलिये 'प्रत्यये' (परे रहते) कहा।

'टाङसिङसामिनात्स्याः' अकारान्त अङ्ग से परे 'टा-ङसि-ङस्' को 'इन आत् स्य' होंगे–से राम–इन, गुण, 'अट्-' से णत्व।

रामाभ्याम्—तृ० द्वि०–राम-भ्याम्–'सुपि च' यञादि सुप् परे रहने पर अदन्त अङ्ग को दीर्घ हो–से दीर्घ।

रामैः—राम-भिस्–'अतो भिस ऐस्' अकारान्त अङ्ग से परे 'भिस्' को 'ऐस्' होगा–से ऐस् (अनेकाल् है सर्वादेश) करने पर वृद्धि, रुत्व-विसर्ग।

रामाय रामाभ्याम् रामेभ्यः—राम-ङे–अवस्था मे 'ङेर्यः' अदन्त अङ्ग से परे ङे को 'य' आदेश होगा, 'सुपि च' से दीर्घ। य को स्थानिवद्भाव से सुप्त्व। 'कष्टाय क्रमणे' आदि निर्देश से सन्निपातपरिभाषा ('जो जिसके आश्रय से अस्तित्व पाता है वह उसका विघातक नहीं होता' प्रकृत य अदन्त अङ्ग के आश्रय से आकर उसी अदन्त को आदन्त नही बना सकता है) अनित्य मानी जायगी। राम–भ्यस् स्थिति मे 'बहुवचने झल्येत्' झलादि बहुवचन सुप् परे रहने पर अदन्त अङ्ग को एकार होगा–से एत्व, स् को रुत्व-विसर्ग। राम–स्, राम–स्य, इत्यादि स्थलों मे ए न हो इसलिए 'बहुवचने' कहा।

रामाणाम्—यहाँ 'राम-आम् वा राम–नाम्' स्थिति मे ए न हो इसलिये 'झलि' कहा। 'पच-ध्वम्' यहाँ ए न हो इसलिये 'सुप् परे' कहा।

रामाद्-त् रामाभ्याम् रामेभ्यः—राम-ङसि, 'टाङसि' से आत्, सवर्णदीर्घ 'झला जशो' से जश्त्व। 'वाऽवसाने' अवसान (आगे वर्ण का अभाव) मे झल् को विकल्प से चर् होगा–से त्। 'अनचि च' से त्-द् द्वित्व विकल्प।

रामस्य—राम-ङस् 'टाङ–' से स्य, 'अनचि च' सद्वित्व। 'खरि च' से (पहले स को) चर्त्व करने पर भी अल्पप्राण होने से 'त' न होकर आन्तरतम्य (सादृश्य) से 'स' ही होगा।

रामयोः—राम ओस्, 'ओसि च' ओस् परे रहते अदन्त अङ्ग को एकार होगा–से रामे–ओस्, अयादेश, रुत्व विसर्ग।

रामाणाम्—राम-आम्, 'ह्रस्वनद्यापो नुट्' ह्रस्वान्त नद्यन्त तथा आबन्त अङ्ग से परे आम् को नुट् आगम होगा–'आद्यन्तौ टकितौ' से टित्

होनेके कारण आद्यवयव। राम-नाम्, 'नामि' नाम् परे रहते अजन्त अङ्ग को दीर्घ होगा। 'अट्'-से णत्व। संनिपातपरिभाषा के कारण पर होने पर भी 'सुपि च' से दीर्घ नही। यहाँ तो आरम्भसामर्थ्य से परिभाषा अनित्य है।

रामे—राम × ङि, 'लशक्व'-से ङकार की इत्सञ्ज्ञा, लोप, गुण।

रामयोः, रामेषु—राम सुप्, 'हलन्त्य' से पलोप, 'बहुवचन' से एत्व, 'अपदान्तस्य मूर्धन्यः' 'इण्कोः' तथा 'आदेशप्रत्यययोः' इण् कवर्गों से परे पदान्त से भिन्न आदेश तथा प्रत्ययावयव जो सकार उसे मूर्धन्य (ष) आदेश होगा-से षत्व। 'इण्कोः' कथन से 'रामस्य' मे षत्व न हुआ। 'आदेशप्रत्यययोः' कथन से 'सुपीः सुपिसौ सुपिसः' मे धातु (पिस गतौ) सम्बन्धि स को ष न हुआ। 'अपदान्तस्य' कथन से 'हरिस्तत्र' मे स को ष न हुआ।

परमसर्वत्र-परमभवकान्—'सर्वादीनि सर्वनामानि' सर्व आदि है जिसके ऐसे शब्द-स्वरूप 'सर्वनाम' कहाते है। 'द्वन्द्वे च' से द्वन्द्व मे संज्ञा निषेध के कारण तदन्त की भी यह संज्ञा होती है यह ज्ञापित होता है, केवल गणपठितों को ही संज्ञा होती तो द्वन्द्व मे प्राप्ति न होने से निषेध व्यर्थ होता। तथा च उक्त उदाहरणो मे 'सप्तम्यास्त्रल्' से सप्तम्यन्त सर्वनाम से विधीयमान त्रल्, 'सर्वनाम्नामकच् प्राक् टेः' से अकच् भी सिद्ध होते है।

सर्वे—(सर्वनामसंज्ञा प्रयुक्त विशेष कार्य वाले रूप ही दिये जाते हैं) 'जसः शी' अदन्त सर्वनाम से परे 'जस्' को 'शी' होगा। यहाँ 'अनेकाल् शित्सर्वस्य' से अनेकाल् होने से सर्वादेश। 'अर्वणस्तृ' आदि स्थलों मे 'नानुबन्धकृतमनेकाल्त्वं' इत्सञ्ज्ञको को लेकर अनेकाल्त्व न माना जायगा-से यहाँ भी 'शी' अनेकाल् नही (श-इत् होने से) हो सकता, ऐसा नही कह सकते, सर्वादेश होने से पहिले 'लशक्व'-से श को इत्सञ्ज्ञा होती ही नहीं। गुण।

सर्वस्मै-सर्वस्मात्-(द्)—'सर्वनाम्नः स्मै' अदन्त सर्वनाम से परे ङे को स्मै होगा-से स्मै। 'ङसिङ्योः स्मात्स्मिनौ' अदन्त सर्वनाम से परे ङसि-ङि को स्मात्-स्मिन् होगे-से ङसि को स्मात् हुआ।

सर्वेषाम्—सर्व-आम्, 'आमि सर्वनाम्न. सुट्' अवर्णान्त से परे सर्वनाम को विहित 'आम्' को 'सुट्' आगम होगा, टित्त्वात् 'आद्यन्तौ-' से आद्यवयव, 'बहुवचने-' से एत्व, 'आदेश'-से षत्व ।

सर्वस्मिन्—'ङसिङ्योः'-से ङि को स्मिन् ।

ये ३५ सर्वनाम है—

सर्व, विश्व, उभ, उभय, डतर, डतम, अन्य, अन्यतर, इतर, त्वत्, त्व, नेम, सम, सिम, पूर्व, पर, अवर, दक्षिण, उत्तर, अपर, अधर, स्व, अन्तर, त्यद्, तद्, यद्, एतद्, इदम्, अदम्, एक, द्वि, युष्मद्, अस्मद्, भवतु, किम् ।

उभकौ—उभशब्द दो का वाचक है, अत एव नित्य द्विवचनान्त है। उसका यहाँ पर पाठ 'अव्ययसर्व'-से अकच् प्रत्ययार्थ है, एक-बहुवचन न होने से 'शी-स्मै' आदि विशेष कार्य होगे नहीं। (स्वार्थादि मे) क प्रत्यय करने से यह रूप न होगा-कारण उभ शब्द से क करने पर द्विवचन (औ) व्यवहित (क से) होने के कारण 'उभादु'-से अयच् होकर 'उभयकौ' बनेगा। 'उभयोऽन्यत्र' वार्तिक मे कहा गया कि द्विवचन से अतिरिक्त स्थलो मे-उभयतः, उभयत्र-वत् 'अयच्' होगा।

उभये—उभय शब्द को द्विवचन नही-है, ये दो मत है (कैयट हरदत्तो के)। उभ-से जस् परे रहते 'उभादुदात्तो नित्यम्' से विहित 'तयप्' स्थानीय 'अयच्' स्थानिवद्भाव से तयप् होने से 'प्रथम चरम'-से सर्वनाम संज्ञा विकल्प से प्राप्त हुई तो सर्वादि मे पाठ होने के कारण जसादि विभक्ति की अपेक्षा न होने से अन्तरङ्ग होने के कारण (विकल्पविधि जस् विभक्ति सापेक्ष होने से-'अल्पापेक्षमन्तरङ्गम्' 'बह्वपेक्षं बहिरङ्गम्'-न्याय से बहिरङ्ग है) नित्य ही सर्वनाम संज्ञा हुई। जस् को शी (ई), गुण।

अन्तरायां पुरि—'अन्तरं बहिर्योगोपसंव्यानयो' इस गण सूत्र मे 'अपुरीति वक्तव्यम्' वा० पूः-शब्द विशेष्य होने पर अन्तर शब्द की सर्वनाम संज्ञा निषेध कहना चाहिये-से सर्वनाम न रहने पर (स्त्रीत्व विवक्षा मे टाप्) 'याडापः' से याट्, 'ङेराम्'-से आम्।

पूर्वे-पूर्वाः—'पूर्वपरावरदक्षिणोत्तरापराधराणि व्यवस्थायामसंज्ञायाम्' इन सात शब्दो की व्यवस्था (अवधि की अपेक्षा = किससे पूर्व किस से पर–इस रूप से) तथा असज्ञा (किसी का नाम नही होना) मे सर्वनामसज्ञा सर्वादि गण मे पाठ होने से सर्वत्र जो प्राप्त है वह जस् परे रहते विकल्प से होगी। सर्वनाम होने पर 'जसः शी' से शी, ई, गुण। न होने पर 'चुटू' से ज् इत्, पूर्वसवर्णदीर्घ, स् को रुत्व-विसर्ग।

दक्षिणा गाथकाः—'व्यवस्था' न कहने से 'चतुर कत्थक' इस अर्थ मे भी सर्वनाम संज्ञा, तथा शी होकर 'दक्षिणे' बनने जाता।

उत्तराः कुरवः—'असंज्ञाया' कथन से 'उत्तर' संज्ञा होने के कारण सर्वनाम न हुआ तो 'जसः शी' भी न लगा। रामवत्।

स्वे-स्वाः—'स्वमज्ञातिधनाख्यायाम्' ज्ञाति (बन्धु), धन से अतिरिक्त (ज्ञाति-धन आत्म-आत्मीय–ये ४ अर्थ है, स्व-शब्द के) के वाचक स्व-शब्द को प्राप्त सर्वनाम सज्ञा जस् मे विकल्प से होगी–से होने के पक्ष मे शी, गुण, अन्यथा पूर्वसवर्ण दीर्घ। रुत्व-विसर्ग।

स्वाः—ज्ञाति तथा धन के वाचक होने पर सर्वनाम न होने से 'प्रथमयो.' से पूर्वसवर्ण दीर्घ ही होगा।

अन्तरे-अन्तरा वा (गृहाः) अन्तरे-अन्तरा वा (शाटकाः)—'अन्तरं बहिर्योगोपसव्यानयो' बाह्य (बाहरके) तथा अन्तरीय वस्त्र के अर्थ मे 'अन्तर' को प्राप्त सर्वनामसंज्ञा जस् मे विकल्प से होगी–संज्ञा होने पर 'शी', गुण। अन्यथा पूर्वसवर्ण दीर्घ। रुत्व-विसर्ग।

पूर्वस्मात्-पूर्वात्, पूर्वस्मिन्-पूर्वे—'पूर्वादिभ्यो नवभ्या वा' पूर्व–पर–अवर–दक्षिण–उत्तर–अपर–अधर–स्व–अन्तर–इन नवो से ङसि-ङि में स्मात्स्मिन् विकल्प से होगे। न होने के पक्ष मे 'टाङसि' से 'आत्' तथा ङि–मे 'लशक्व' से ङ् की इत्संज्ञा तथा लोप के पश्चात् गुण।

त्वत्कपितृकः-मत्कपितृकः—'न बहुव्रीहौ' बहुव्रीहि समास करना अभीष्ट होने पर सर्वनाम संज्ञा न होगी। बहुव्रीहि मे समास से पहिले अलौकिक विग्रह वाक्य मे ही संज्ञा न होगी, अन्यथा उस विग्रहवाक्य मे श्रूयमाण

'अकच्' (अव्ययसर्वनाम्ना–से विहित) का समास भी श्रवण होगा –इस विवरण से सर्वनाम न होने से क प्रत्यय करने पर 'त्वकं पिता यस्य सः, अहक पिता यस्य सः' अर्थ मे 'प्रत्ययोत्तर'—से युष्मत्–अस्मत् के मपर्यन्त को त्व–म आदेश करने पर 'त्वत्क मत्क' बनेगा। 'अकच्' करने पर तो 'त्वकत्' 'मकत्' बनेगा।

सर्वो नाम कश्चित्, तस्मै सर्वाय देहि, अतिसर्वाय देहि, अनिकतरं कुलं, अतितत्— 'संज्ञोपसर्जनीभूतास्तु न सर्वादयः' वा० नाम तथा विशेषण होने पर सर्वादि शब्द 'सर्वनाम' नहीं होते है–से चारो प्रयोग नाम तथा विशेषण होने से ङे का स्मै कतर को अद्ड् आदेश तथा अतितत् मे त्यदाद्यत्व और 'तदोः सः' से सभाव न हुये।

मासपूर्वाय—'तृतीयासमासे' से मास से पहला (मासेन पूर्वः) इस तृतीया समास मे सर्वनामता नहीं।

मासेन पूर्वाय—'समासार्थवाक्येऽपि न' विवरण से यहाँ भी सर्वनामता न होने से ङे को स्मै न हुआ।

वर्णाश्रमेतराणाम्—'द्वन्द्वे च' द्वन्द्व समास मे सर्वनाम संज्ञा नहीं। यह निषेध समुदाय का है, न कि प्रत्येक का। सर्वनाम से विहित आम् को ही सुट्– इस व्याख्यान के कारण तदन्त विधि से सुट् न होगा।

वर्णाश्रमेतरे वर्णाश्रमेतराः—'विभाषा जसि' जस् को आधार मानकर (जसः शी) शी के कर्तव्य मे द्वन्द्वसमास मे सर्वनाम संज्ञा विकल्प से होगी।

वर्णाश्रमेतरकाः—शी–के प्रति ही विकल्प है, अतः अकच् नहीं, किन्तु निन्दा मे क प्रत्यय ही।

प्रथमे-प्रथमाः द्वितये-द्वितयाः नेमे नेमाः—'प्रथमचरमतयाल्पार्धकतिपयनेमाश्च' ये शब्द जस् के विषय मे विकल्प से सर्वनाम होगे। होने से शी, गुण। सूत्र मे 'तय' प्रत्यय है अतः 'प्रत्ययग्रहणे तदन्तग्रहणम्' से द्वितय लिया गया।

द्वितीयस्मै-द्वितीयाय। एवं तृतीयः—'विभाषाप्रकरणे तीयस्य ङित्सूपसंख्यानम्' ङकारेत् विभक्तियों मे तीय प्रत्ययान्त की विकल्प से सर्वनामता।

पटुजातीयाय—अर्थवान् के ग्रहण मे अनर्थक को नही लिया जायगा ('अर्थवद्ग्रहणे नानर्थकस्य ग्रहणम्' प०) से 'जातीयर्' समुदाय के एकदेश अर्थरहित 'तीय' की सर्वनाम सज्ञा नही होगी।

निर्जरः, निर्जरसौ, निर्जरसः, निर्जरसा, निर्जरसे, निर्जरसः—'जराया जरसन्यतरस्याम्' जरा को जरस् आदेश विकल्प से होगा अजादि विभक्ति परे रहते (सु, भ्या, भिस्, भ्यस्, सुप्—को छोड़कर अन्यत्र सभी स्थलों पर)। पद और अङ्ग के अधिकार मे जिसको जो विहित है वह उसको और वह अन्त मे है जिस (समदाय) को उसको भी होगा ('पदाङ्गाधिकारे तस्य च तदन्तस्य च' प०)। निष्क्रान्तो जराया ('निरादयः क्रान्ताद्यर्थे' से समास, 'गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य'-से ह्रस्व) इति निर्जरः=बुढापा से रहित-देवता। अनेकाल् होने से 'अनेकाल्'-से सर्वादेश प्राप्त होने पर निर्दिश्यमान ('जरायाः'-सूत्र मे प्रत्यक्षश्रूयमाण) को ही आदेश होगा ('निर्दिश्यमानस्यादेशा भवन्ति' प०)-से जर-भाग को ही हुआ। यद्यपि निर्जर जरा-शब्दान्त नही (पुंल्लिग मे ह्रस्व होने से) है, तथापि एकदेश मे विकार को प्राप्त उस से भिन्न नही ("एकदेशविकृतमनन्यवत्')। यह आदेश वैकल्पिक है, अत एक पक्ष मे रामवत् चलेगा, जरसादेश होने पर भी हलादि विभक्ति परे रहते रामवत् रूप होगे।

'निर्जरसिन निर्जरसात् निर्जरसै निर्जरस्य'—वृत्तिकार के मत में-'विप्रतिषेधे परं कार्यम्' मे अपरं=अभीष्ट कार्य करना चाहिये-यह अर्थ मान कर जरसादेश से पहिले 'टाङसि' से 'इन-आत्' करने पर संनिपातपरिभाषा (अदन्ताङ्ग के आश्रय से उत्पन्न 'इन-आत्-ऐसों' का अजादिविभक्ति होने से जरसादेश के निमित्त होकर अदन्त को विकृत करना) को अनित्य मानकर जरस् आदेश करने पर ये रूप बनेगें। ङस् को स्य करने पर अजादि विभक्ति न होने से जरस् आदेश नही होगा, यही एक रूप रहेगा। (पर यह सब भाष्य-विरुद्ध है-अनुपादेय है)।

पाद पादौ पादाः, पादं पादौ पद पादान्, पदा, पादेन—इत्यादि—'पद्दन्नोमास्हृन्निशसन्यूषन्दोषन्यकञ्छकन्नुदन्नासञ्छस्प्रभृतिषु' पाद दन्त नासिका मास

हृदय निशा असृज् यूष दोष यकृत् शकृत् उदक आस्य—इनको पद्-दत्-नस्-मास्-हृद्-निश्-असन्-यूषन्-दोषन्-यकन्-शकन्-उदन् आसन्—ये आदेश शस् आदि विभक्तियो मे विकल्प से होगे। ५ वचनो मे रामवत्। शस् मे पाद को पद्-अस्, रुत्व विसर्ग। पक्ष मे रामवत्।

दतः दता, दद्भ्याम्—दन्त शब्द सुट् मे रामवत्। शस् आदि मे दन्त को 'पद्दन्नो' से दत् आदेश, 'सुडनपुंसकस्य' सुट्—ये ५ वचन 'सर्वनामस्थान' कहाते है, नपुसक के नहीं। 'स्वादिष्वसर्वनामस्थाने' कप् प्रत्यय (५वे अध्याय के अंत मे) तक के, सर्वनामस्थान भिन्न स्वादि प्रत्यय परे रहते पूर्व 'पद' कहलाता है—से दत्-अस् स्थिति मे दत् को पदसंज्ञा प्राप्त होने पर-'यचि भम्' यकारादि तथा अजादि कप्-प्रत्यय तक के, सर्वनामस्थान भिन्न स्वादि प्रत्यय परे रहते पूर्व 'भ' कहाता है। इस प्रकार दोनो की प्राप्ति पर-'आकडारादेका संज्ञा (१-४-१) यहाँ से लेकर 'कडाराः कर्मधारये' (२-२-३८) से पूर्व एक को एक ही संज्ञा होगी जो पर तथा अनवकाश (अलब्ध स्थान) हो—से शस् आदि अजादि विभक्ति परे रहते पूर्व को भसंज्ञा। इसी प्रकार के हलादि वचन परे रहते पूर्व की पदसंज्ञा है। प्रकृत दत्-अस् मे दत् भ है। अतः 'झला जशोऽन्ते' नही लगा। इसी प्रकार टा मे भी। भ्याम् आदि हलादि वचनो मे पूर्व की पदसंज्ञा होने से 'झला जशोऽन्ते' से जश्त्व-द्।

मासः मासा, माभ्याम्-माभि—मास शब्द को शस् तथा टा परे रहते 'पद्दन्नो-मास्' से मास् आदेश, स् को रुत्व विसर्ग। भ्याम्-भिस् मे मास् आदेश होने पर पद होने के कारण 'ससजुषो रु' से स को रुत्व, 'भोभगो'-से यत्व, 'हलि सर्वेषाम्' से यलोप।

यूष्णः यूष्णा—'पद्दन्नो'—से (यूष = जूस) यूष को शसादि मे यूषन् आदेश। यूषन्— स् इस स्थिति मे 'अल्लोपोऽनः' अङ्गका अवयव सर्वनाम-स्थानभिन्न यकारादि तथा अजादि-स्वादि पर मे है जिस 'अन्' को उसके अ का लोप होगा—से षकारोत्तर वर्त्ति अ का लोप होनेपर-'रषाभ्या नो णः समानपदे' एक पद मे स्थित रेफ-षकारों से पर में रहने

वाले न को ण होगा से णत्व, स् का रुत्व–विसर्ग। टा मे भी अ-लोप णत्व। यहा 'अचः परस्मिन् पूर्वविधौ' 'पूर्वस्मादपि विधि.' पूर्व से पर मे होने वाली विधि मे भी स्थानिवद्भाव है—इस पक्ष मे अ-लोप को स्थानिवद्भाव (अ) होने से प से परे न नहीं रहा कि णत्व हो। तब 'अट्कुप्वा'–से णत्व समझना। 'पूर्वत्रासिद्धे न स्थानिवत्' से णत्व ('रषाभ्या'–८–४–१) पूर्वत्रासिद्ध सम्बन्धि होने से स्थानिवद्भाव का निषेध नही होता—कारण 'तस्य दोषः सयोगादिलोपलत्वणत्वेषु' स्थानिवद्भाव-निषेध का बाध है स योगादिलोप–लत्व–णत्व के कर्तव्य में।

यूषभ्याम् यूषभिः यूषभ्यः—यूषन् से हलादिवचन परे रहते पद संज्ञा होने पर 'न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य' प्रातिपदिक संज्ञक जो पद है तदन्त नकार का लोप होता है–से नलोप। नलोप असिद्ध (८–२–७) होने से 'सुपि च' 'अतो भिस ऐस्' 'बहुवचने'–से क्रम से दीर्घ-ऐस्–एत् न होंगे।

यूष्णि-यूषणि—'विभाषा ङिश्योः' भसंज्ञक अन् के अकार का विकल्प से लोप होगा ङि-शी परे रहते–से अलोप विकल्प स० ए० वचन मे।

'ककुद्दोषणी' 'पदंघ्रि' 'स्वान्तं हृन्' 'आसन्य प्राणमूचुः' 'दक्षिणं दोर्निशाचरः'—'पद्दन्नो'–सूत्र मे 'प्रभृति' क अर्थ सादृश्य है, तथा च सु-आदि प्रत्यय परे रहते भी दोषन्–पत्–हृत्–आसन् आदेश होगे–यह ऊपर प्रदर्शित भाष्यादि प्रयोगो से सिद्ध है। दोष्–शब्द पुन्नपुंसक है। शस् का सादृश्य सु आदि मे सुप् होने से सहज है।

द्व्यह्नः—'द्वयोरह्नोर्भवः' समास में 'अह्नोऽह्न एतेभ्यः' सर्वादि से परे अहन् को अह्न आदेश होगा–से 'अह्न'। यण्। अकारान्त है। सु का रुत्व–विसर्ग।

द्व्यह्नि-द्व्यहनि द्व्यह्ने, व्यह्नि-व्यहनि व्यह्ने, सायाह्नि-सायाहनि सायाह्ने,–'सख्या-विसायपूर्वस्याह्नस्यान्यतरस्या ङौ' सख्या-वि-साय पूर्व मे है जिस अह्न–शब्द को, उसको ङि परे रहते अहन् आदेश विकल्प से होगा–से अहन् होने पर 'विभाषा ङिश्योः' से भसंज्ञक अ के लोप विकल्प से दो रूप। अहन् न होकर 'अह्नोऽ'–से अह्न आदेश, इ, गुण। विगतम् अहः–व्यह्नः, अह्नः सायः (अवसान) सायाह्नः–यह विग्रह है॥ इति अदन्त॥

विश्वपाः—विश्व पाति–इति विश्वपा–स् रुत्व विसर्ग। आबन्त न होने से 'हल्ङ्याप्' में सु-लोप न होगा।

विश्वपौ विश्वपाः—'दीर्घाज्जसि च' दीर्घ से जस् तथा इच् परे रहते पूर्वसवर्णदीर्घ न होगा। वृद्धि। यद्यपि 'नादिचि' से यहाँ दीर्घ निषेध हो जाता है, जस् मे तो पूर्वसवर्ण होने पर भी वही रूप बनता है जो 'अकः सवर्णे'–से, फिर भी गौरी शब्द से औ जस् मे इस 'दीर्घात्' की आवश्यकता है, औचित्य से यहाँ भी यह सूत्र उदाहृत है।

विश्वपः विश्वपा—शस् मे विश्वपा अस्–इस स्थिति मे 'आतो धातोः' आकारान्त जो धातु (पाधातु) तदन्त भसंज्ञक अङ्ग का लोप होगा, 'अलोऽन्त्यस्य' षष्ठी से निर्दिष्ट आदेश अन्त्य अल् को होगा–से आ का लोप। रुत्व विसर्ग।

विश्वपाभ्याम्। एवं शङ्खध्मादयः—यहाँ पदसंज्ञक अङ्ग होने से आ–लोप नही। यथाश्रुत प्रत्यय योग। शङ्खं धमति=शख को फूकता है–शङ्खध्माः, आदि आकारान्त (ध्मा) धात्वन्त शब्द भी विश्वपावत्।

हाहान्—'आतो धातोः' मे धातु न कहने पर 'हाहा शस्' मे भी आ लोप हो जाता, अब तो 'प्रथमयोः' से दीर्घ, 'तस्माच्छसो'–से न।

हाहा—टा मे 'चुटू' प्रत्ययादि च-ट वर्ग इत् है–से इत्संज्ञा लोप, सवर्ण दीर्घ।

हाहै—'ङे' मे 'लशक्व'–से ङ् की इत्संज्ञा लोप, 'वृद्धिरेचि' से वृद्धि।

हाहाः—ङसि-ङस् मे अनुबन्ध लोप के अनन्तर सवर्णदीर्घ, रुत्व विसर्ग।

हाहौः—ओस् मे 'वृद्धिरेचि'–से वृद्धि, रुत्व–विसर्ग।

हाहे—ङि–मे 'आद्गुणः' से गुण। अन्य रूप विश्वपावत् हैं।

क्त्वः-श्नः—क्त्वा-श्ना ये दोनो प्रत्यय है, इनके आ का भी शस् मे लोप होता है, अतः 'आतो धातोः' इस सूत्र का 'आतः' ऐसा विभाग कर कहीं कहीं धातु भिन्न भसंज्ञक आ का लोप होता है–अर्थ है। इति आदन्त॥

हरिः हरी—सु मे रुत्वविसर्ग। औ मे 'प्रथमयोः' से पूर्वसवर्ण दीर्घ।

हरयः—'जसि च' ह्रस्वान्त अङ्ग का गुण होता है जस् परे रहते–से हरि मे के इ को गुण–ए। अयादेश, रुत्व–विसर्ग।

हे हरे—'ह्रस्वस्य गुणः' ह्रस्व का गुण होगा सम्बुद्धि परे रहते–से गुण। 'एङ्ह्रस्वात्'–से सुलोप।

हरिम् हरी हरीन्—'अमि पूर्वः' से पूर्वरूप, द्वि०व० मे पूर्वसवर्णदीर्घ, शस् मे पूर्वसवर्णदीर्घ के बाद 'तस्माच्छसो नः'–से न।

मत्यै—'शेषो घ्यसखि' नदीसंज्ञक से अन्य ह्रस्व इ–उ वर्णान्त शब्द 'सखि' को छोड़कर 'घि' कहाता है। सूत्र मे शेषः–अर्थात् अनदीसज्ञक–इस लिये कहा गया कि मति–ङे इस अवस्था मे 'ङिति ह्रस्वश्च' से नदीत्व-पक्ष मे भी घिसज्ञा होकर नदीत्वप्रयुक्त 'आट्' तथा वृद्धि, इधर 'घेर्ङिति' से गुण होकर 'मतयै' बन जाता। 'आकडारादेका सज्ञा' से ही 'मत्यै' यहाँ नदीसंज्ञा पक्ष मे घि- सज्ञा न होगी, अतः सूत्र मे शेष शब्द स्पष्टार्थ है।

वातप्रम्ये—'ह्रस्व इ–उ'—न कहने पर वातप्रमी को घिसंज्ञा होकर ङे मे 'वातप्रमये' बन जाता। वास्तव मे यण्।

मात्रे—'इ–उ' इसलिये कहा कि ङे मे 'मातृ' शब्द को भी घि सज्ञा होकर गुण अ- रपर होकर 'मातरे' ऐसा अनिष्ट रूप बनता।

हरिणा—'आङो नाऽस्त्रियाम्' घि से परे आङ् (टा) को 'ना' होगा स्त्रीलिङ्ग से अन्यत्र-से ना आदेश, 'अट्कु'–से णत्व।

मत्या—स्त्रीलिङ्ग से अन्यत्र इस लिये कहा गया कि यहाँ 'ना' न हो।

हरये—'घेर्ङिति' घिसज्ञक अग को ङ–इत् वाले सुप् परे रहते गुण होगा–से गुण-ए, अयादेश।

सख्ये—यहाँ भी गुण न हो जाय इसलिये 'घेः' कहा, सखि घि नही है।

हरिभ्याम्—'ङ इत् वाले सुप्' इसलिये कहा कि यहाँ भी गुण न हो जाय।

पटव—'सुप्' इसलिये कहा गया कि घि सज्ञक पटु शब्द से 'वोतो गुण'-से ङीष् परे रहते गुण न हो जाय। ङीष् ङित् है पर सुप् नही।

हरेः—'घेर्ङिति' से हरि ङसि-ङस् मे गुण करने पर 'ङसिङसोश्च' एङ् को ङसि ङस् सम्बन्धी अ परे रहते पूर्वरूप एकादेश होगा–से पूर्वरूप, रुत्वविसर्ग। 'उपदेशे'–से ङसि का इ इत् है।

हर्योः—ओस् मे यण्। रुत्वविसर्ग।

हरीणाम्—हरि–आम्, 'ह्रस्वनद्या'–से नुट्, 'अट्'–से णत्व।

हरौ हर्योः हरिषु—हरि–ङि, 'अच्च घेः' इत् उत् (तपर) से पर ङि को औ,

तथा घि (हरि–के इ) को अ अन्तादेश होगा, वृद्धि। सुप् मे 'आदेशप्र'–से षत्व।

ग्रामणीः—'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात् सुतिस्यपृक्तं हल्' हलन्त से परे, तथा दीर्घ ङी और आप् से परे स्थित 'सु-ति-सि' रूप अपृक्त = ('अपृक्त एकाल् प्रत्ययः') अकेला हल् लुप्त होगा। सूत्र मे 'हलन्त तथा ङी आप् से परे' न कहने से 'ग्रामणीः' के (यह तीनो मे नही) सु का भी लोप हो जाता।

निष्कौशाम्बि अतिखट्वः—'दीर्घ' ङी आप् न कहने पर 'निष्क्रान्तः कौशाम्ब्याः' 'खट्वामतिक्रान्तः' (कौशाम्बी से निकला हुआ, खटिया का अतिक्रमण किया हुआ) 'निरादयः क्रान्ता'–से 'अत्यादयः'–से समास करने पर 'गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य' से ह्रस्व हो जाने पर सु का लोप हो जाता। यहाँ दोनो उदाहरणो मे क्रम से ङी-आप् है।

अभैत्सीत्—सूत्र मे 'सु-ति-सि' ऐसा हल् का विशेषण न देने पर यहाँ त् से परे स्थित स् का लोप (हलन्त से परे होने से) होता, तिप् के साथ मे कहने के कारण विभक्ति रूप सिप् ही लिया जायगा, न कि अभैत्सीत् मे का सिच्।

बिभर्त्ति—'अपृक्त' न कहने पर रेफ से परे स्थित ति का लोप होने लगता, कहने पर तो 'त् इ = ति' अपृक्त न होने से लुप्त नही होता।

बिभेद—'हल् लुप्त होगा' न कह कर 'अपृक्त वर्ण का लोप' कहने पर 'भिदि र्' के लिट् मे तिप् स्थानापन्न 'णल्' के अ का (हलन्त से परे होने से) लोप होता।

राजा—'हल्ङ्याब्भ्यः' मे हल्-न कहने पर 'राजन् स्' इस अवस्था मे नान्त उपधा को दीर्घ कर संयोगान्त स् का लोप करने से ही 'राजा' बन पाता, पर संयोगान्त लोप त्रैपादिक होने के कारण असिद्ध होने से न-लोप न होता। 'हलङ्याप्' से सु लोप तो षष्ठाध्यायस्थ होने से असिद्ध नहीं।

सखा—'अनङ् सौ' सखि रूप अङ्ग को 'अनङ्' आदेश होगा सम्बुद्धि भिन्न सु परे रहते, ङित् होने से ('ङिच्च') अन्त्य को 'सखन् स्' इस स्थिति मे 'सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ' नकारान्त उपधा ('अलोऽन्त्यात् पूर्व उपधा') को

दीर्घ होगा सम्बुद्धि से अतिरिक्त सर्वनामस्थान परे रहते-से सखान् स् बनने पर 'हल्ङ्याप्' से सु-लोप, 'न लोपः'-से न-लोप।

हे सखे—'ह्रस्वस्य गुणः' से गुण, 'एङ ह्रस्वात्'-से सुलोप।

सखायौ सखाय. सखायं सखायौ—'सख्युरसम्बुद्धौ' सखि-अङ्ग से परे सम्बुद्धि से अतिरिक्त सर्वनामस्थान णिद्वत् (ण-इत्-सा) होगा-से औट् तक णिद्वत् हुये। 'अचो ञ्णिति' ञित् और णित् परे रहते अजन्ताङ्ग की वृद्धि होगी-से सखि के इ की वृद्धि=ऐ हो कर 'एचोऽयवा'-से आय्। विभक्ति योग पूर्ववत्।

सखीन्—पूर्वसवर्ण दीर्घ और 'तस्माच्छसो'-से शस् के स को न।

सख्या सख्ये—'घ्यसखि' से 'घि' न होने से तत्प्रयुक्त कार्य नही, यण्।

सख्युः—'ख्यत्यात्परस्य'-खि-ति शब्द तथा खी-ती शब्द-जिनका कि यणादेश हो चुका है-से परे रहने वाले ङसि ङस् सम्बन्धी अ को उ होगा-से ङसि-ङस् के अ को उ। रुत्व-विसर्ग।

सख्यौ—ङि परे रहते 'औत्' इत् उत् से परे रहने वाले ङि को औ होगा। यण्।

सुसखा सुसखायौ सुसखायः—शोभनः सखा = (अच्छा मित्र) सुसखा-अनङ तथा णिद्वद् भाव अङ्गसम्बन्धी होने से 'पदाङ्गाधिकारे तस्य च तदन्तस्य च' परिभाषा से सखि शब्दान्त सुसखि शब्द को भी अनङ णिद्वद्भाव।

सुसखिना सुसखये—'असखि' से घिसज्ञा निषेध 'सुसखि' मे न प्रवृत्त होगा, यतः यह समुदाय 'सखि' नही है। अतः टा मे ना-भाव, ङे मे गुण।

सुसखेः २—ङसि और ङस् मे 'घेर्ङिति'-से गुण करने पर यणादेश न होने के कारण 'ख्यत्यात्' से ङसि ङस् के अ को उत्व न होगा, अपितु 'ङसि-ङसोश्च' से पूर्वरूप।

सुसखौ—'अच्च घेः' से औत्व, घि को अ अन्तदेश। वृद्धि।

अतिसखा—अतिशयित. सखा, यहाँ भी अनङ् णिद्वद्भाव, घिसंज्ञा, सुसखिवत्।

परमसखा परमसखायौ—'परमः सखा यस्य' इस विग्रह मे सखिशब्द गौण होने पर भी उसको 'अनङ्' णिद्वद्भाव होंगे, भाष्यकैयट प्रामाण्य से।

अतिसखिः—सखीमतिक्रान्तोऽतिसखिः- यद्यपि यहाँ 'प्रातिपदिकग्रहणे लिङ्गवि-

शिष्टस्यापि ग्रहणम्' परि० से सखीशब्दान्त से भी 'राजाहस्सखिभ्यष्टच्' से टच् (अ) होकर 'अतिसख' (रामवत्) होना था, पर यह परिभाषा अनित्य है, अत टच् नही। यह हरिवत् चलेगा। अनङ् णिद्भाव न होंगे, यहाँ सखीशब्द समास होने के बाद 'गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य' से ह्रस्व हुआ है। यह सखि-शब्द लाक्षणिक ('गोस्त्रियोः'-शास्त्र से सिद्ध) है। 'लक्षणप्रतिपदोक्तयोः प्रतिपदोक्तस्यैव ग्रहणम्' परि० से 'अनङ् सौ' 'सख्युरसबुद्धौ' शास्त्रो मे प्रत्यक्ष उक्त 'सखि' ही लिया जायगा।

पत्या पत्ये—'पतिः समास एव' पति शब्द समास मे ही घिसंज्ञक है-से घि न होने से नाभाव तथा गुण नहीं। यण्।

पत्यु. २—'ख्यत्यात्परस्य' 'खि-ति' से परे ङसिङस् के अ को उ। रुत्व-विसर्ग।

पतीनां—'ह्रस्वनद्यापो'-से नुट्, 'नामि' से अङ्ग को दीर्घ।

पत्यौ—केवल 'औत्' से ङि को औ, यण्।

भूपतिना भूपतये—उक्त सूत्र से समास मे घिसज्ञा होने से नाभाव तथा 'घेर्ङिति' से गुण अयादेश।

कति-कवि कतिभिः कतिभ्यः कतीनां कतिषु—'कति' नित्य बहुवचन है। 'बहु-गणवतुडति सख्या' ये ४ सख्या कहाते है। 'डति च' डतिप्रत्ययान्त सख्या षट् कहाता है-से कति (डत्यन्त) 'षट्' कहाता है। ('प्रत्ययस्य लुक्श्लुलुपः' लुक् श्लु लुप्-शब्दो से कृत प्रत्यय का लोप इन्ही नामो से पुकारा जायगा।) 'षड्भ्यो लुक्' षट् से परे जस्-शस् का 'लुक्' (लोप) होगा-से जस-शस् का लोप। 'प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्' प्रत्यय लुप्त होने पर भी प्रत्ययाश्रित कार्य होगा-से 'जसि च' से गुण प्राप्त होने पर 'न लुमताङ्गस्य' 'लु' जिनमे हो उन शब्दो (लुक् श्लु लुप्) से लुप्त होने पर प्रत्यय को निमित्त मानकर अङ्ग का कार्य (गुण आदि) न होगा-से गुण नही। भिस्-भ्यस्-आम्-सुप् यथापूर्व।

त्रयः त्रीन् त्रिभि. त्रिभ्यः२ त्रयाणाम्—त्रि बहुवचनान्त ही है। त्रि-जस्, 'जसि च' से गुण, अयादेश, रुत्व-विसर्ग। 'त्रेस्त्रयः' त्रिशब्द को त्रयादेश होगा आम् परे रहते-से त्रय-आम् 'ह्रस्व'-से नुट्, 'नामि' दीर्घ। 'अट्कु'-से णत्व।

परमत्रयाणाम्—अङ्गाधिकारस्थ होने से त्रिशब्दान्त से भी 'पदाङ्गाधिकारे तस्य च तदन्तस्य च' परि०-से त्रयादेश होगा। 'परमाश्च ते त्रयश्च' कर्मधारय।

प्रियत्रीणाम्—'प्रियाः त्रय. यस्य' बहुव्रीहि समास मे तो अन्य पदार्थ प्रधान होने से एकद्वि-बहुवचन भी है, प्रियत्रि शब्द के रूप हरिवत् होगे ऐसा कतिपय विद्वान का मत है।

प्रियत्रयाणाम्—वस्तुतः त्रय आदेश होगा, 'गौणमुख्ययोर्मुख्ये कार्यसम्प्रत्ययः' यह न्याय पदकार्य मे ही लगेगा। इसी से 'प्रियतिस्रा' यह भाष्योदाहरण (गौण मे भी तिस्र आदेश) सगत होता है।

त्रिषु—'आदेश'-से षत्व।

द्वौ-द्वौ द्वाभ्यां३ द्वयोः२—द्विशब्द नित्य द्विवचनान्त है। 'त्यदादीनामः' त्यद् आदि शब्दो को अकार अन्तादेश होता है विभक्ति परे रहते-से द्वि के इ के स्थान मे अ, द्व-औ वृद्धि। रामद्विवचनवत्। 'द्विपर्यन्तानामेवेष्टिः' वा० अकार अन्तादेश त्यद् से लेकर द्वि तक ही है।

भवान् भवन्तौ भवन्तः—द्वि तक ही क्यो? भवतु भी त्यदादि मे पठित है। भवत् स्-स्थिति मे 'उगिदचा'-से नुम्, सु का हल्ङ्यादि से लोप, भवन् त्-मे त का 'सयोगान्त' लोप, 'अत्वसन्तस्य'-से उपधादीर्घ भवान्, यहाँ भी 'त्यदादि' से त को अ करने पर 'भवा' ऐसा अनिष्ट रूप बनता। औ-जस् मे भी भवत् को अ-पररूप नुम् होवे।

द्विः द्वी द्वयः, अतिद्विः—नाम तथा विशेषण बनने पर द्वि को त्यदादि मानकर अ नहीं होगा। सर्वादि के अन्तर्गण कार्य होने से 'सज्ञोपसर्जनीभूतास्तु न सर्वादयः' वा० से निषेध हो जाता है। अतः यह द्वि किसी की सज्ञा है, हरिवत् रूप होगे। इसी प्रकार 'द्वौ अतिक्रान्तः अतिद्विः'-यह भी उपसर्जन होने से सर्वादि नहीं है। हरिवत्।

परमद्वौ—'परमौ च तौ द्वौ च' कर्मधारयसमास-यहाँ प्राधान्य है, अङ्गाधिकारस्थ होने से तदन्त को भी अ होगा।

औडुलोमिः औडुलोमी उडुलोमाः, औडुलोमिम् औडुलोमी उडुलोमान्—'उडूनि लोमानि यस्य स उडुलोमा-तस्यापत्यमौडुलोमिः', (नक्षत्र रोमवाले का

पुत्र) । 'बाह्वादिभ्यश्च' से अपत्यार्थ मे इञ्, एक द्विवचन मे हरिवत् रूप है। बहुवचन मे 'लोम्नोऽपत्ये बहुष्वकारो वक्तव्यः' लोमन् शब्द से बहुत अपत्य (सन्तान) विवक्षित होने पर अकार कहना चाहिये-से अ इञ् का अपवाद है। ञ्णित् आदि प्रत्यय पर मे न होने से 'तद्धितेष्व-चा'-से आदिवृद्धि न हुई। केवल ब० वचनों मे रामवत् है। इति इदन्त।

वातप्रमीः वातप्रम्यौ वातप्रम्यः, वातप्रमीम् वातप्रम्यौ वातप्रमीन्, वातप्रम्या वातप्रमीभ्याम् ३, वातप्रम्ये वातप्रम्यः२ वातप्रम्याम् वातप्रमी वातप्रम्योः२ वातप्रमीषु—'वातं प्रमिमीते इति वातप्रमीः' (भेडिया) यह 'वातप्रमीः' इस उणादि सूत्र से माङ् को ई प्रत्यय, वह कित्-ऐसा निपात है। रुत्व विसर्ग। औ जस् मे 'दीर्घाज्जसि च' से पूर्वसवर्णदीर्घ का निषेध। यण्। 'अमि पूर्वः' से पूर्वरूप। शस् मे पूर्वसर्णदीर्घ, 'तस्माच्छ'-से न। टा मे यण्। ङे मे यण्। ङसि-ङस् मे यण्, रुत्व विसर्ग। ओस् मे यण्। आम् मे यण्, दीर्घ होने से 'ह्रस्वन' से नुट् नही। ङि मे ङ को 'लशक्व०' से इत्संज्ञालोप, सवर्णदीर्घसन्धि। ययी-पपी के भी ऐसे ही रूप बनेंगे।

ययीः पपीः—यान्त्यनेन इति-ययीः=मार्ग, पाति लोकम् इति पपीः=सूर्य। 'या-पो. किद्द्वे च' उणादि० या तथा पा धातु को ई प्रत्यय होगा वह कित्। 'आतो लोप'-से आ-लोप प्रकृतिभूत या-पा को द्वित्व भी होगा-से निष्पन्न है ये शब्द। सु का रुत्व विसर्ग।

वातप्रम्यम् वातप्रम्यः वातप्रम्यि—'मीञ् हिंसायाम्' इति मीधातु से क्विप् करने पर बनने वाले वातप्रमी शब्द के अम् शस् तथा ङि मे आगे वक्ष्यमाण 'एरनेकाचा'-से (ईकारान्त धातु होने के कारण) यण्। प्रधी शब्द के जैसे रूप होगे। उसको इन तीन विभक्तियों मे विशेष विधि यण्।

बहुश्रेयसी—बह्वयः श्रेयस्यः(बहुत से प्रशस्त स्त्रिया)यस्य सः-बहुव्रीहि, 'ईयसुन्' अत। 'उगितश्च' से ङीप्। 'स्त्रियाः पुंवद्'-से बहु शब्द को पुंवद्भाव। 'गो-स्त्रियोरुप'-से अन्त्य ई को ह्रस्व-'ईयसो बहुव्रीहेर्नेति वाच्यम्' वार्तिक से नहीं होता। 'हल्ङ्या'-से दीर्घ ङयन्त होने के कारण सुलोप।

हे बहुश्रेयसि—'यू स्त्र्याख्यौ नदी' ई ऊ अन्त नित्य स्त्रीलिग नदी कहाते है। 'प्रथमलिङ्गग्रहण च' वा० समास से पूर्व मे स्त्रीलिंग शब्द को समास के अनन्तर विशेषण होने (स्त्रीलिंग न रहने) पर भी 'नदी' कहना चाहिये-से नदी सज्ञा, 'अम्बार्थनद्योर्ह्रस्वः' अम्बार्थ (पर्याय) तथा नद्यन्तो का ह्रस्व होगा सम्बोधन मे-से ह्रस्व।

बहुश्रेयसीन्—पूर्वसवर्ण दीर्घ होने के अनन्तर 'तस्माच्छसो'-से न।

बहुश्रेयस्यै बहुश्रेयस्याः२—ङे परे रहते 'आण्नद्याः' नद्यन्त से परे ङित् वचनो को आट् आगम होगा-से आट्, 'आटश्च' आट् को अच् परे रहते वृद्धि होगी-से वृद्धि-ऐ। ङसि-ङस् मे भी आट्, वृद्धि-आ होगी।

बहुश्रेयसीनाम्—'ह्रस्वनद्यापो नुट्' से आम् को नदी होने से नुट् आगम।

बहुश्रेयस्याम्—ङि परे रहते 'ङेराम्नद्याम्नीभ्य.' नद्यन्त आबन्त तथा नी शब्द से परे ङि को आम् होगा-से आम् तथा आट्, वृद्धि-आ, यहाँ आम् को 'ह्रस्वनद्या'-से नुट् का, आट् पर होने से बाधक है। अन्य रूप ईप्रत्ययान्त वातप्रमीवत् है।

अतिलक्ष्मीः—ङयन्त न होने से 'हल्ङयाब्भ्यो'-से सुलोप नही। रुत्व विसर्ग। 'लक्षेर्मुट्' से ई प्रत्यय तथा उसको मुट् आगम, औणादिक, लक्ष्मी का अतिक्रमण करने वाला (लक्ष्मीम् अतिकान्त.)।

कुमारी—कुमारीमात्मन इच्छति, (अपने को कुआरी चाहता है) वा कुमारी-वाचरति (कुवारी जैसा आचरण करता है) क्यजन्त अथवा आचारक्विबन्त से कर्त्रर्थ मे क्विप्। 'हलङ्याप्' से सुलोप।

कुमार्यौ-कुमार्यः—औ परे रहते 'अचिश्नुधातुभ्रुवा य्वोरियङुवङौ' श्नुप्रत्ययान्त को, इ-उ वर्णान्त धातु को, भ्रू-इस अङ्ग को भी इयङ तथा उवङ होंगे अजादि प्रत्यय परे रहते। ङित् होने से अन्तादेश। सादृश्य से इ को इयङ (उ को उवङ) प्राप्त होने पर 'एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य' धातु का अवयवरूप संयोगपूर्ववाला नही जो तदन्त जो धातु, तादृश धात्वन्त अनेकाच् अंग को यण् होगा अजादि प्रत्यय परे रहते-से यण्।

हे कुमारि—'अम्बार्थनद्यो'-से नदी होने से ह्रस्व।

कुमार्यम्-कुमार्यः—अम् और शस् मे पूर्वरूप तथा पूर्वसवर्ण दीर्घ के अपवाद भूत इयङ् का भी अपवाद रूप 'एरनेकाचो'-से यण्।

कुमार्यै कुमार्याः २—'आण्नद्याः' से ङिद् विभक्तियो मे आट्, 'आटश्च' से वृद्धि।

कुमारीणाम्—आम् मे 'ह्रस्वनद्यापो'-से नुट्, 'रषाभ्या'-से णत्व।

कुमार्याम्—'ङेराम्'-से आम्।

प्रधीः प्रध्यौ २ प्रध्यः प्रध्यम् प्रध्य.—प्रकृष्ट ध्यायते-इति प्रधीः, क्विप्। कृदन्त होने से 'कृत्तद्धित'-से प्रातिपदिकता, सुबुत्पत्ति। ङ्यन्त नही। रुत्व-विसर्ग। सभी अजादि वचनो मे 'एरनेका'-से यण्।

उन्नीः—उन्नयति इति उन्नीः-सुका रुत्व-विसर्ग। अर्थ-उन्नति करनेवाला।

उन्न्यौ—यहाँ संयोग (न्न्) रहने पर भी धात्ववयवरूप (नीधातु-उत् उपसर्ग) सयोग न होने से 'एरनेकाचो'-से यण्।

हे उन्नीः—'नदी' न होने से 'अम्बार्थनद्यो' से ह्रस्व नही।

उन्न्यम्—अजादि विभक्ति परे रहते सर्वत्र 'एरनेका'-से यण्।

उन्न्याम्—ङिमे 'ङेराम्नद्याम्नीभ्यः' मे 'नी' होने से आम्। यण्।

ग्रामणीः—ग्राम नयतीति ग्रामणी.=लबरदार, ग्रामनेता, 'अग्रग्रामाभ्या नयतेर्णो वाच्य.' से णत्व। रुत्व-विसर्ग। यह भी नी-शब्दवत् है।

नीः नियौ नियः, नियम् निय., नियाम्—'एरनेकाच'-सू०मे 'अनेकाच् अङ्ग को यण् होगा' न कहने पर नी-औ यहाँ भी यण् होता, एकाच् होने से यण् नही, किन्तु 'अचि श्नुधातु'-से इयङ् होता है। अम् शस् मे भी पर होने से इयङ् होगा, न कि 'अमिपूर्वः' 'तस्माच्छसा'। ङि मे 'ङेराम्'-मे नी हाने से आम्, इयङ् नी।

सुश्रियौ यवक्रियौ—'एरनेकाचो'-मे 'असंयोगपूर्वस्य' न कहने पर इन दोनों स्थानो मे भी यण् हो जाता, यहाँ श्रिन्-क्रीञ् धातु संयोगपूर्व है, अतः 'अचि श्नु'-से इयङ्।

शुद्धधियौ परमधियौ—'गतिकारकेतरपूर्वपदस्य यण् नेष्यते' वा० गतिसंज्ञ (प्रादि) तथा कारक से अतिरिक्त पद पूर्व मे होने पर यण् नहीं-से दोनो स्थानो मे इयङ्।

दुर्धियः, वृश्चिकभियः—यद्यपि 'दुर्' गति है, तथा 'वृश्चिकात्' यह अपादान कारक है, अत यहाँ यण् होना चाहिये, नकि इयङ्, तथाऽपि 'दुःस्थिता धीः येषा' इस विग्रह मे 'दुर्' यह ष्ठा (स्थिता) के प्रति गति है, नकि 'धी' के प्रति, ('उपसर्गाः क्रियायोगे' 'गतिश्च') एवं 'वृश्चिक' मे अपादानत्व भी विवक्षित नही, किन्तु-सम्बन्धमात्र अथवा 'वृश्चिकसम्बन्धिनी भीः' ऐसा उत्तरपदलोप है।

सुधियौ सुधिय—'न भूसुधियो.' भू तथा सुधी शब्दो को अजादिविभक्ति परे रहते यण् ('एरनेकाचो'–से) नही, किन्तु सुधी को इयङ्। सु० गति है, अतः प्रतिपद निषेध है।

सखा, सखायौ, सखाय.—'सखायमिच्छति सखीयति' सखीय शब्द से क्विप्। मित्र चाहने वाला। एकदेश में विकृत (रूपान्तर को प्राप्त) अभिन्न-सा है–वा० से सखिशब्द मे जैसा अनङ् तथा णिद्वद्भाव।

हे सखीः !—ङ्यन्त नहीं, सखी–सु, रुत्वविसर्ग।

सखायम् सखायौ—अम् परे रहते 'अमि पूर्व.'–से 'एरनेका'–पर होने से यण् प्राप्त होने पर उससे भी पर होने के कारण 'सख्युरसंम्बुद्धौ' से णिद्वद्भाव।

सख्यः—शस् मे 'प्रथमयोः पूर्वसवर्णः' का अपवादभूत 'एरनेकाचो' से यण्।

सखीः—सह खेन(=आकाश से वा खकारसे साथ है) इति सखः, सखमिच्छतीति सखीः, सुका रुत्व विसर्ग।

सुखीः—सुखमिच्छति इति सुखीः, रुत्वविसर्ग। ('क्यचि च' से ई)।

सुतीः—सुतमिच्छति इति सुती', ङ्यन्त न होने से सुलोप नही–रुत्वविसर्ग।

सख्यौ सुख्यौ सुत्यौ—तीनों मे अजादि विभक्ति परे रहते 'एरने'–से यण्।

सख्युः सुख्युः सुत्युः—तीनों स्थलों मे ङसि-ङस् के अ-को 'ख्यत्यात्परस्य' सू० में खि-ति तथा दीर्घ खी-ती का भी ग्रहण होने से, उ, स को रुत्वविसर्ग।

लूनीः क्षामीः प्रस्तोमीः—'लूञ् छेदने' धातु के क्त-जन्त से क्विप् का रूप। सु का रुत्वविसर्ग। 'क्षै क्षये' यह क्यच्-क्विप् मे का रूप। 'स्त्यै ष्ट्यै शब्दसंघातयोः' धातु, क्यच् क्विप्।

लून्युः क्षाम्युः प्रस्तोम्युः—इन तीनो के ङसि-ङस् के अ परे रहते यण् ('एरनेकाचो'–से) निष्ठा-त को 'ल्वादिभ्यः' 'क्षायो मः' तथा 'प्रस्त्योऽन्यतरस्याम्' से म , अत यह नत्व-मत्व 'ख्यत्यात्'–की दृष्टि से (त्रैपादिक होने से) असिद्ध है, अतः 'ख्यत्यात्' से उ, स को रुत्वविसर्ग।

शुष्कीः शुष्कियौ शुष्कियः—शुष धातु, क्यजन्त शुष्कीय से क्विप्। अल्लोप यलोप। रुत्वविसर्ग। अजादि विभक्तियो मे 'अचिश्नु'–से इयङ्, सयोग पूर्व होने से 'एरने'–नही लगा।

पक्वीः पक्वियौ पक्वियः—पचधातु, 'पचो वः' से निष्ठात को व, क्यजन्त से क्विप्। अजादिवचनो मे इयङ्, सयोगपूर्व होने से यण् नही।

शुष्किय पक्वियः—ङसि-ङस् मे भी इयङ् रुत्वविसर्ग। यहाँ भी 'शुष्क' में 'शुषः कः'को असिद्ध मानकर उत्व प्रसग नही, 'ख्यत्यात्'–कृतयणादेश ङसि ङस् के अ को ही उ करता है। प्रकृत मे इयङ्, यण् नही।

शम्भु—हरिवत् है अर्थात् घिसंज्ञक है। जस्-सम्बुद्धिगुण, नाभाव, ङिद्वचनो मे गुण आदि होगे। इसी प्रकार विष्णु वायु भानु आदि है।

क्रोष्टा—क्रोष्टु–'तृज्वत् क्रोष्टुः' सम्बुद्धि से अतिरिक्त सर्वनामस्थान परे रहते क्रोष्टु शब्द तृच् अन्त (ऋकारान्त) सा हो जाता है–अर्थात् क्रोष्टु क्रोष्टृ होता है। 'ऋतो ङिसर्वनामस्थानयोः' ङि तथा सर्वनामस्थान परे रहते ऋदन्त अङ्ग को गुण होता है–की प्राप्ति पर–'ऋदुशनस्पुरुदंसोऽनेहसाञ्च' ऋदन्त तथा उशनस् पुरुदंस अनेहस् को अनङ् (अन्) होगा सम्बुद्धि भिन्न सर्वनामस्थान परे रहते। ङित् होने से अन्त्य को, क्रोष्टन् स्–स्थिति मे 'अप्तृन्तृच्स्वसृ नप्तृनेष्टृत्वष्टृक्षत्तृहोतृपोतृप्रशास्तॄणाम्' अप् तृन् तृच् स्वसृ नप्तृ नेष्टृ त्वष्टृ क्षत्तृ होतृ पोतृ-प्रशास्तृ–इनके उपधा को दीर्घ होगा सम्बुद्धि से अतिरिक्त सर्वनामस्थान परे रहते–से (तृजन्त होने से) उपधादीर्घ, क्रोष्टान् स्, 'हल्ङ्या'–से सुलोप, 'नलोपः'–से न लोप।

'नप्त्रादिग्रहणं व्युत्पत्तिपक्षे नियमार्थम्'—'अप्तृन्'–मे 'तृच्' कहने से ही नप्त्रादि ७ सातों को दीर्घ हो जाता तो नप्त्रादि ७ शब्दों का ग्रहण 'उणादि से

निष्पन्न तृन् वा तृजन्त संज्ञा शब्दो को दीर्घ हो तो केवल इन्ही सातों को हो, पितृभ्रात्रादि को न हो' इस प्रकार नियमार्थ है।

क्रोष्टारौ क्रोष्टार क्रोष्टारं क्रोष्टारौ—क्रोष्टु औ-'तृज्वत्क्रोष्टुः' से तृज्वद्भाव (ऋदन्त), 'ऋतोङि'-से गुण अ (रपर), 'अप्तृन्'-से दीर्घ। सुट् मे इसी प्रकार।

क्रोष्टून्—'प्रथमयो'-से पूर्वसवर्ण दीर्घ, 'तस्माच्छसो'-न्। सर्वनामस्थान न होने से तृज्वद्भाव नहीं।

क्रोष्ट्रा क्रोष्ट्रे - 'विभाषा तृतीयादिष्वचि' अजादि तृतीया आदि विभक्ति परे रहते क्रोष्टु शब्द विकल्प से तृज्वत् होगा-से क्रोष्टृ आ, यण्-र। ङे मे भी।

क्रोष्टुः २—ङसिङस् मे क्रोष्टृ अस् इस स्थिति मे 'ऋत उत्' ऋदन्त से ङसि-ङस् के अ परे रहते उ एकादेश होगा-से उ (रपर), क्रोष्टुर् स् 'रात्सस्य' रेफ से परे संयोगान्त स का ही लोप होगा, अन्य (ऊर्क् आदि मे क्) का नही-से स लोप। 'खरवसान'-से रेफ को विसर्ग।

क्रोष्टूनाम्—आम् मे 'ह्रस्वनद्या'-मे परशास्त्र 'तृज्वत्'- होने से तृज्वद्भाव प्राप्त होने पर 'नुमचिरतृज्वद्भावेभ्यो नुट् पूर्वविप्रतिषेधेन' वा० 'नुम्', 'अचि र ऋत.' से विहित रेफ, तृज्वद्भावो को बाध कर नुट ही होगा-से नुट्, 'नामि' से दीर्घ।

क्रोष्टरि क्रोष्ट्रोः—क्रोष्टृ इ, 'ऋतो ङि'-से गुण अ (रपर)। ओस् मे यण्-रेफ।

'पक्षे हलादौ च शम्भुवत्'—तृतीयादि से तृज्वद्भाव वैकल्पिक होने से क्रोष्टु शम्भुशब्दवत् उकारान्त है, घिसंज्ञक है। हलादिविभक्तियो मे तो उकारान्त शम्भुवत् ही रूप होगे। **इति उदन्त। अथ ऊदन्त।**

हूहूः हूह्वौ हूह्वः, हूहूम् हूह्वौ हूहून्—गन्धर्वविशेष वाचक रूढ शब्द है। सु मे रुत्व विसर्ग। औ मे 'दीर्घाज्जसि च'-से पूर्वसवर्णदीर्घ निषेध, यण्, जस् तथा औट् मे भी। अम् मे 'अमि पूर्व.' से पूर्वरूप यण् का अपवाद है। शस् मे 'प्रथमयो.'-से पूर्वसवर्णदीर्घ, 'तस्माच्छसो'-से न।

हे अतिचमु—चमूम् अतिक्रान्त –अतिचमूः, (सेना का अति क्रमण करने वाला) 'प्रथमलिङ्गग्रहणञ्च' से 'नदी' प्रयुक्त कार्य होंगे। 'अम्बार्थनद्योर्ह्रस्वः–' से ह्रस्व।

अतिचम्वै अतिचम्वाः—'आएनद्याः' 'आटश्च' आडागम तथा वृद्धि ।

अतिचमूनाम् , अतिचम्वाम्—'ह्रस्वनद्या'-से नुडागम । 'ङेराम्'-से आम् ।

खलपूः—खलं पुनाति इति, क्विप् । सुको रुत्व-विसर्ग ।

खलप्वौ खलप्वः—'अचि श्नुधातु'-से उवङ् के प्राप्त होने पर 'ओः सुपि' धात्ववयवरूप सयोग पूर्व वाला नही जो उवर्ण तदन्त जो धातु, तादृश उवर्णान्त धात्वन्त अनेकाच् अङ्ग को यण् होगा अजादि सुप् परे रहते । प्रकृत पूञ् धातु है । 'गतिकारकेतर'-वा० से कर्मकारक पूर्ववाला होने से यण् ।

एवं सुल्वादयः—इसी प्रकार सुष्ठु लुनातीति सुलूः, इसको भी अजादि वचनो मे 'गति' पूर्वक होने से यण् होगा ।

लूः लुवौ लुवः—सूत्रार्थ मे 'अनेकाच् अङ्ग' कहने से 'लूः' (लूञ् धातु=काटना) यहाँ एकाच् होने से यण् न होकर उवङ् ।

उल्लूः उल्ल्वौ, उल्ल्वः—उत्कृष्ट लुनातीति-यहाँ संयोग होने पर भी धात्ववयव रूप संयोग न होने से यण् हुआ (उत्, लूञ्-धातु)

कटप्रूः कटप्रुवौ कटप्रुवः—'संयोग पूर्व वाला नहीं' (असंयोगपूर्वस्य) कहने से यहाँ यण् न होकर उवङ् हुआ । 'प्रू गतौ' धातु ।

परमलुवौ—वार्तिक मे 'गतिकारक' कहने से यहाँ दोनो न होने से यण् नहीं, उवङ् 'अचि श्नु' से ।

लुलुवतुः—'लुलू अतुस्' इस अवस्था मे यण् न हो इसलिये कहा गया कि 'सुप्' परे रहते, यहाँ तिङ् है । उवङ् ।

स्वभूः स्वभुवौ स्वभुवः—स्वस्मात् भवतीति स्वभूः, अपादानकारक पूर्ववाला होने से प्राप्त है यण् , 'न भूसुधियोः' से निषेध होकर उवङ् ।

वर्षाभ्वौ वर्षाभ्वः—'वर्षाभ्वश्च' वर्षाभूके ऊ को यण् होगा अजादि सुप् परे रहते । 'न भूसु'-का अपवाद है । वर्षासु भवति-इति वर्षाभूः=मेढक ।

दृम्भतीति दृम्भूः—'दृभी-ग्रन्थे' धातु है, अर्थ ग्रन्थ-रचना करता है । 'अन्दूदृम्भू'-इत्यादि उणादि सूत्र से निपातित है । रुत्व विसर्ग ।

दृम्भ्वौ-दृम्भ्वः, दृम्भूम् दृम्भ्वौ—यहाँ ऊकार धात्ववयव नहीं, अतः 'अचि श्नु' से

उवङ्, तथा 'ओः सुपि' से यण् नहीं, किन्तु 'इको यणचि' से यण्।

दृम्भूम् दृम्भ्वौ--अम् मे यणपवाद 'अमि पूर्वः' से पूर्वरूप।

दृम्भून्--शस् में यण् का अपवाद 'प्रथमयोः पूर्वसवर्णः'। 'तस्माच्छ-' से न। अन्यरूप हूहूवत् है।

दृन्भूः—'दृन्' नकारान्त हिंसार्थक अव्यय, भूधातु से क्विप्, सर्प-वृक्षविशेष कपि, अर्थ है। रुत्वविसर्ग। 'नश्चापदान्तस्य' से अनुस्वार पदान्त होने से नही।

दृन्भ्वौ दृन्भ्व—'न भूसु' से यण् निषेध होने पर 'दृन्करपुनःपूर्वस्य भुवो यण् वक्तव्यः' वा० दृन्-कर-पुन.—पूर्ववाले भूको यण् होगा, यण्। खलपूवत् चलेगा।

करभूः करभ्वौ करभ्वः, पुनर्भूः पुनर्भ्वौ पुनर्भ्वः—करभू हाथ से उत्पन्न नख, पुनर्भू दुबारा उत्पन्न तथा दुबारा विवाह करनेवाली स्त्री। 'पुनर्भूर्यौगिके पुंसि,' 'पुनर्भूर्दिधिषू' इत्यमरः।

कारभ्वौ कारभ्व.--यहाँ भी 'कर' ही कार (प्रज्ञादि होने से स्वार्थ मे अण्) है, अतः उक्तवार्तिक से यण्।

दृग्भूः, काराभूः—आँख से उत्पन्न, जेल से उत्पन्न, दोनों स्वयम्भूवत्। उवङ् होगा।

धाता--'डुधाञ् धारणपोषणयोः' ब्रह्मा। धातृ-अनङ्, धातन् दीर्घ (अप्तृन्-से) सुलोप, नलोप।

हे धातः--'ऋतो ङि' से गुण (धातृ-अर्) हल्ङ्यादि से सुलोप, रेफको विसर्ग।

धातारौ धातार—'ऋतो' से गुण, 'अप्तृन्' से दीर्घ।

धातॄणाम्--आम् मे 'ह्रस्वनद्या' से नुट्, 'नामि' से दीर्घ, 'ऋवर्णान्नस्य णत्वं वाच्यम्' से न को ण।

नप्ता नप्तारौ--नप्ता-नाती, यह शब्द भी धातृवत् चलेगा।

उद्गातारौ—उद्गातृशब्द औणादिक तृन् या तृजन्त का नप्त्रादि में समावेश न ने पर भी भाष्यप्रयोग से दीर्घ।

पिता--पातीति पिता—'ऋदुशनस्' से अनङ्, 'सर्वनामस्थाने-' से दीर्घ सुलोप, 'नलोपः-' से नलोप।

पितरौ पितरः--औणादिक शब्दों को व्युत्पन्न मानने के पक्ष मे 'अप्तृन्' से नियमन (दीर्घ नप्त्रादि को ही होगा) के कारण यहाँ दीर्घ नहीं।

पितरम्, पितरौ--'ऋतो ङि' से गुण सर्वनामस्थान (सुट्) परे रहते। शसादि मे धातृवत् है। जामातृ भ्रातृ आदि ऋकारान्त शब्द भी इसी प्रकार चलेंगे।

ना नरौ नरः--नृशब्द मनुष्यवाचक है। सु परे रहते 'ऋदुशनस्' से अनङ् 'सर्वनामस्थाने' से दीर्घ। हल्ङ्यादि से सुलोप। नलोप। द्वि-बहुवचनों मे 'ऋतो ङि' से गुण (अर्), विभक्ति योग।

हे नः--संबोधन मे 'ऋतो' से गुण, हल्ङ्यादिलोप, अर् (गुण) के रेफ को विसर्ग।

नृणाम् नॄणाम्--आम् मे 'ह्रस्वनद्या' नुट्, 'नृच' नृ को नाम् परे रहते विकल्प से दीर्घ, अन्यथा 'नामि' से नित्य दीर्घ होता। 'ऋवर्णान्नस्य' से णत्व।

कीः किरौ किरः, तीः तिरौ तिरः—'कॄ-विक्षेपे' 'तॄ प्लवनतरणयोः' धातु है, इनके अनुकरण (सदृशोच्चारण) मे 'प्रकृतिवदनुकरणम्' प० से पाक्षिक धातुत्व का अतिदेश (सादृश्य) होने से 'ऋत इद्धातोः' से इत्त्व रपर (इर्) किर्-तिर् सु इस स्थिति मे 'र्वोरुपधा' से दीर्घ। सु का हल्ङ्यादि लोप,'खरवसा' से रेफ को विसर्ग। द्विबहुवचनादि सभी रूप गीर्शब्दवत्।

क्रः क्रौ क्रः, कॄम् क्रौ कॄन्, क्रा क्रे--इत् न करने पर ('प्रकृतिवद'—अनित्य है, अतः अनुकरण कॄ तॄ को धातुत्व नहीं तो 'ऋत'-नहीं लगेगा) सुका रुत्व विसर्ग। 'ऋदुशन' मे 'ऋत्' तपर होने से अनङ् आदि नहीं। अजादिवचनों मे 'इको यण' से यण्-र।

गमा शका—गम्लृ-शक्लृ गति तथा शक्त्यर्थक धातु के अनुकरण मे ऋलृवर्णो के सावर्ण्य होने के कारण ऋग्रहण से लृ भी गृहीत होगा, अतः 'ऋदुशनस्' से अनङ्, दीर्घ-सुलोप नलोप।

गमलौ गमलः। गमलं गमलौ गमॄन्। गम्ला, गम्ले—'ऋतो ङि-' से गुण लपर (अल्, 'उरण् रपरः' मे 'र' से र-ल गृहीत है) शस मे 'प्रथमयो' से पूर्व-

सवर्णदीर्घ, लृको दीर्घ न होने से ऋृ, 'तस्मात्'—से न, टा-ङे मे यण् (ल)।

गमु शकुल्—ङसि ङस् मे 'ऋत उत्' से उ लपर, ङसि-ङस् के स् को 'सयोगान्तस्य लोपः' से लोप।

सेः सयौ सयः। स्मृतेः स्मृतयौ स्मृतयः—इः = कामदेव, इ के साथ इस अर्थ मे (इना सह वर्तत इति, 'वोपसर्जनस्य' से सह को स, गुण) 'से.,' सु का रुत्व-विसर्ग। इसी प्रकार 'स्मृतः इः येन सः स्मृतेः' अजादि वचनों मे अय् आदेश।

गौः गावौ गावः—गो सु। 'गोतो णित्' गोशब्द से परे सर्वनामस्थान णिद्वत् (ण इत् है जिसका ऐसा) होगा, 'अचो ञ्णिति' अजन्त अङ्गकी वृद्धि होगी ञित् तथा णित् प्रत्यय आगे रहते—से वृद्धि, रुत्व विसर्ग। औ-जस् मे आवादेश।

गाम् गावौ गाः—अम्-शस् परे रहते 'औतोऽम्शसोः' ('आ-ओ = औतः') ओकार से अम्-शस् सम्बन्धी अच् परे रहते आकार एकादेश होगा—से आ। शस् के स का रुत्व-विसर्ग।

'अचिनवम् असुनवम्'—ऊपर 'शस्' के साथ का 'अम्' सुप् ही लिया जायगा, न कि तिङ्, ये दोनों प्रत्युदाहरण है, चिञ् सुन् के लङ् उ० पु० ए० व० मे अचिनो अम्, असुनो-अम् यहाँ 'औतोऽम्-' से आ न होगा।

गवा गवे गोः २—'टा-ङे' मे अवादेश। ङसि-ङस् मे 'ङसिङसोश्च' से पूर्व-रूप, स को रुत्व विसर्ग।

सुद्यौः सुद्यावौ सुद्यावः—सु शोभना द्यौ. यस्य सः = अच्छे आकाशवाला दिवस। सुद्यो-सु इस अवस्था मे 'ओतो णिदिति वाच्यम्, विहितविशेषणा च' ओकारान्त से विहित सर्वनामस्थान णिद्वत् होगा, (विशेषण से युक्त ओकार से भी) णिद्वद्भाव, 'अचोऽञ्णिति' वृद्धि, सुका रुत्व-विसर्ग। अजादि सुट् मे (अम् को छोडकर) वृद्धि, आवादेश।

सुद्याम्—'औतोऽम्शसो'—आत्व 'अमि पूर्वः' से पूर्वरूप।

हे भानो हे भानवः—भानुशब्द से 'ह्रस्वस्य' से गुण ओ होने पर ('एङ्-ह्रस्वात्' से सुका लोप होता है) यहाँ 'ओतो'—से वृद्धि की सम्भावना

नहीं, यतः यह सु उकारान्त से विहित है, ओ-से नहीं। जस् परे रहते 'जसि च' से गुण करने पर भी उक्त युक्ति से वृद्धि नहीं।

स्मृतौः स्मृतावौ स्मृतावः। स्मृताम् स्मृतावौ स्मृताः—उ = शिव। उः स्मृतः येन सः-स्मृतो-सु-'ओतो णिद्वत्' से णिद्वद्भाव 'अचो' से वृद्धि, सु का रुत्वविसर्ग। अजादि वचनों मे वृद्धि आवादेश। 'औतोऽम्शसोः' से अम्-शस् मे आत्व।

राः रायौ रायः, रायम् रायौ रायः, राया राभ्याम्—रै = धन। रै-सु 'रायो हलि' रै शब्द को आकार अन्तादेश होगा हलादिवचन परे रहते—से आत्व, सु का रुत्व-विसर्ग। अजादि वचनों में आयादेश।

ग्लौः ग्लावौ ग्लावः, ग्लावम्, ग्लावौ ग्लावः—ग्लौ —चन्द्र, सु मे रुत्व-विसर्ग। अजादि वचनों मे आवादेश। हलादि मे यथाश्रुत विभक्ति योग, सुप् मे षत्व। अजन्तपुंलिंग समाप्त।

अजन्तस्त्रीलिंगप्रकरण

रमा रमे रमाः—रमा—लक्ष्मी, रमु धातु से पचाद्यच्, स्त्रीत्व विवक्षा मे 'अजाद्यतः'—से टाप्। हल्ङ्यादि से सुलोप, औ मे 'औङ आपः' आदन्त अङ्गसे परे औ को शी होगा। 'लशक्व'—से इत्, लोप, गुण। जस् मे सवर्णदीर्घ।

हे रमे हे रमे हे रमाः—'सम्बुद्धौ च' आप् को ए होगा सम्बोधन मे गुण, 'एङ् ह्रस्वात्'—से सम्बुद्धि—लोप।

रमाम् रमे रमाः—'अमि पूर्वः' से पूर्वरूप, शीभाव-गुण, शस् मे पूर्वसवर्णदीर्घ।

रमया रमाभ्यां रमाभिः—'आङि चापः' आङ् (टा) और ओस् परे रहते आबन्त अङ्ग को ए होगा अयादेश। भ्याम्-भिस् मे यथाश्रुत।

रमायै रमाभ्यां रमाभ्यः—'याडापः' आप् से परे ङिद्वचनों (ङे ङसि, ङस् ङि) को याट् आगम होगा, टित्-आद्यवयव, वृद्धि—ऐ।

रमायाः रमाभ्यां रमाभ्यः। रमायाः, रमयोः रमाणाम्। रमायाम् रमयोः रमासु—ङसि-ङस् को याट्, सवर्णदीर्घ, स को रुत्व-विसर्ग। ओस् मे 'आङि चापः' से ए, अयादेश रुत्व-विसर्ग। आम् में 'ह्रस्वनद्यापो' से नुट्, 'अट्कु'—से णत्व। ङिमे याट् 'ङेराम्'—से आम्।

सर्वस्यै, सर्वस्याः २, सर्वासाम्—सर्वा ङे–इस स्थिति मे 'सर्वनाम्नः स्याड्ढ्रस्वश्च' आबन्त सर्वनाम से परे स्थित ङिद् वचनों को स्याट् आगम होगा और आप् को ह्रस्व भी होगा–याट् का अपवाद है, टित्–आद्यवयव को। वृद्धि, ह्रस्व।

सर्वासाम्, सर्वस्याम् सर्वयोः सर्वासु—आम् मे 'आमि सर्व'–सुट्। टित्वात् आद्यवयव। (यद्यपि 'सर्वा' को सर्वनाम मे पठित न होने से सुट् दुर्लभ है, तथाऽपि सर्व के अ, तथा आप् के आ को जो सवर्णदीर्घ एकादश हुआ है, उसी को पूर्वान्त से सर्व मान कर सुट्)। ङि मे 'ङेराम्'–से आम्, स्याट् तथा ह्रस्व।

उत्तरपूर्वस्यै-उत्तरपूर्वायै—'विभाषा दिक्समासे बहुव्रीहौ' विकल्प से सर्वनाम सज्ञा। होने पर स्याट् और ह्रस्व न होने पर याट्।

उत्तरपूर्वायै—ऊपर 'दिङ्नामान्यन्तराले' से प्रतिपदोक्त दिक्समास विवक्षित है, अन्यत्र 'या उत्तरा सा पूर्वा यस्या मुग्धायाः सा'–इस बहुव्रीहिसमास मे सर्वनामसंज्ञा विकल्प से भी नही। याट्।

अन्तरस्यै शालायै, अन्तरायै नगर्यै—'अन्तरं बहि'–से बाह्य अर्थ मे सर्वनामसंज्ञा होने से स्याट्, (अवकाश अवधि आदि अर्थों मे नहीं)। उसी गणसूत्र मे 'अपुरीति वक्तव्यम्' से नगरी के विशेषण होने पर सर्वनाम नही। याट्।

द्वितीयस्यै द्वितीयायै, द्वितीयस्या· द्वितीयाया, द्वितीयस्यां द्वितीयायाम्—'विभाषा द्वितीयातृतीयाभ्या' इन से परे ङिद्वचनों को स्याट् तथा आप् को ह्रस्व विकल्प से होगा। पुलिंग में 'तीयस्य ङित्सूपसख्यान' वा० से यह सूत्र गतार्थ है। शेष रमावत्। 'तृतीया' भी इसी प्रकार।

हे अम्ब हे अक्क हे अल्ल—'अम्बार्थनद्योर्ह्रस्वः' से सम्बोधन मे ह्रस्व, 'एङ्ह्रस्वात्' से सु लोप।

हे अम्बाडे हे अम्बाले हे अम्बिके !—'असंयुक्ता ये ड-ल-कास्तद्वता ह्रस्वो न' वा० संयोग ('हलोऽनन्तराः संयोग') नहीं ऐसे ड-ल-क घटित को ह्रस्व नहीं, 'सम्बद्धौ च' से ए। सम्बुद्धिलोप।

जरा जरसौ, जरसाम्—'जराया जरसन्य'–से अजादि वचनों में जरसादेश। औ

में 'शी' विधायकशास्त्र से 'जराया'-पर शास्त्र होने से जरस्। संनिपातपरिभाषा अनित्य है। आम् मे भी 'ह्रस्वनद्या'-से 'जराया'-पर है। पत्त मे रमावत्। हलादि वचनों मे भी रमावत्।

'जरसी' इति केचित्—यहाँ 'विप्रतिषेधे परं कार्यं' मे पर-शब्द के इष्ट का भी वाचक होने से पहले 'शी' करने के अनन्तर संनिपातपरिभाषा को अनित्य मानकर जरस् मानते हैं, यह भाष्य विरुद्ध है। (यद्यपि जरस् को स्थानिवद्भाव से 'आप्' मानकर शीभावादि विधियाँ प्राप्त होते हैं, इसी प्रकार नस् निश् पृत् मे। पर अल्विधि होने से स्थानिवद्भाव नही, अथवा आप् मे आ-का प्रश्लेष कर आकाररूप आ ही सर्वत्र 'आङि चापः' आदि विधियों मे विवक्षित है)।

'अतिखट्वः' 'निष्कौशाम्बिः'—'हल्ङ्या'-सूत्र मे भी 'आ–आप्, ङी ई' ऐसा प्रश्लेष से ही आरूप आप् से तथा ईरूप ङी से परे सु–ति–सि का लोप मानने से इन दोनों उदाहरणोंमे सुलोप नहीं प्राप्त होता। अतः 'हल्ङ्या'-सूत्र मे 'दीर्घात्' का ग्रहण अनपेक्षित है।

'अतिखट्वाय'—यहाँ के स्वतःसिद्ध आ-मे 'आप' को स्थानिवद्भाव से मानकर 'याडापः' से याट् नही होगा–यतः याट् आबन्त अङ्ग से विहित है। यह तो अदन्त अग की चतुर्थी है।

नसः। नसा नोभ्याम्। निशः। निशा—'पद्दन्नो' से शसादि मे नासिका को नस् तथा निशा को निश् अस्, रुत्व विसर्ग। भ्याम् मे नस् के स् को रु तथा रुको उ, गुण।

निड्भ्याम् निड्भिः—'व्रश्चभ्रस्जसृजमृजयजराजभ्राजच्छशा ष' व्रश्च आदि सातों को तथा छ-श अन्तवाले को भी ष अन्तादेश होगा झल् परे रहते एवं पदान्त मे। 'स्वादिष्व'-से भ्यामादि परे रहते पद होने से श् को ष, ष को 'झला'-से जश्-ड।

निट्त्सु निट्सु—सुप् परे रहते 'डः सि'-से धुट् विकल्प से। ड-ध को चर्त्व। ट् त्।

निज्भ्यां निज्भिः—'व्रश्च'-सूत्र मे कुछ विद्वान् 'धातोः' की अनुवृत्ति मानकर

छ्-श का विशेषण बना देते है। निश् धातु न होने से केवल (ष नहीं) जश्त्व से ज्।

निच्श् निच्छ्—निश् सु, जश्त्व से श को ज, सु को श्चुत्व-श, ज को चर्त्व-च, 'शश्छोऽटि' से छ पाक्षिक है।

पृतः, पृता पृद्भ्याम्। गोपा विश्वपावत्—'मासपृतनासानूना मांस्पृत्स्नवो वाच्याः शसादौ वा'वा० से शस् आदि मे पृत्। भ्यामादि मे जश्त्व। पक्ष मे तथा सुट् मे 'पृतना' रमावत्। अर्थ सेना।

मतिः, मतीः, मत्या—यह प्रायः हरिवत्। स्त्री होने से शस् मे 'तस्माच्छसो' से स् को न तथा टा-मे ना नही, रुत्व-विसर्ग। टा आदि मे यण्।

मत्यै, मतये, मत्याः मतेः, मत्यां मतौ—'ङिति ह्रस्वश्च' इयङ् उवङ् के योग्य स्त्री-शब्द से भिन्न नित्य स्त्रीलिङ्ग ई-ऊ तथा ह्रस्व इ उ स्त्रीलिंग मे ङित् वचन परे रहते विकल्प से नदीसंज्ञक होंगे, 'आण्नद्याः' से आट् वृद्धि। पक्ष मे 'घेर्ङिति' से गुण अयादेश। ङसिङस् मे भी आट् वृद्धि-आ, यण्। पक्ष मे गुण 'ङसिङसो'-से पूर्वरूप, रुत्वविसर्ग। ङि को आम्, यण्। पक्ष मे 'अच्च घेः' से अत्वसनियोगशिष्ट औ। श्रुति स्मृति आदि शब्द भी इसी प्रकार।

तिस्रः तिस्रः तिसृणाम्—'त्रिचतुरोः स्त्रियां तिसृचतसृ' स्त्रीलिङ्ग मे त्रि-चतुर् शब्दों को तिसृ-चतसृ आदेश होंगे विभक्ति परे रहते। 'अचि र ऋतः' तिसृ-चतसृ को रेफादेश होगा अच् परे रहते। केवल बहुवचन। 'ऋतो'-से गुण, 'प्रथमयो.' से पूर्वसवर्णदीर्घ, 'ऋत उत्' से उ का यह रत्व अपवाद है। आम् मे 'नुमचिर'-से नुट्, 'न तिसृचतसृ' इनको नाम् परे रहते दीर्घ नहीं। 'ऋवर्णान्न'—वा० से णत्व।

प्रियत्रिः 'प्रियत्रयाणाम्'—प्रियाः त्रयः, त्रीणि वा यस्याः-इस बहुव्रीहि समास मे प्रियत्रि-शब्द मतिवत्। आम् मे 'त्रेस्त्रयः' से त्रयादेश आग होने से तदन्त मे भी होगा, नुट्, णत्व।

प्रियतिसा प्रियतिस्रौ प्रियतिस्रः, प्रियतिस्रम्—'प्रियास्तिस्रो यस्य सः'-इस विग्रह में प्रयत्रि शब्द पुल्लिङ्ग होने पर भी समासघटक त्रि-शब्द स्त्रीवाचक।

होने से 'तिसृ' आदेश, 'ऋदुशन'-से अनङ्, 'सर्वनाम'-से दीर्घ, सुलोप-नलोप। औ आदि में 'ऋतो ङि' का अपवाद 'अचि र' से रेफ। अम् मे भी 'गुणदीर्घोत्वानामपवादः' यह पूर्वरूप का भी उपलक्षण है, रत्व।

प्रियत्रि कुलम्, प्रियतिसृ प्रियतिसृणी प्रियतिसृणि, प्रियतिसृणा प्रियतिस्रा—'प्रियास्तिस्रो यस्य तत् कुल' विग्रह करने पर नपुंसक मे सु-अम् का लुक् होने से 'न लुमता'-से प्रत्ययलक्षण कार्य (तिसृ आदेश) नही। 'न लुमता' के अनित्यत्व पक्ष मे तिसृ आदेश, अजादि वचनों मे 'रत्वात् पूर्वविप्रतिषेधेन नुम्' वा० रत्व को बाधकर नुम्-से नुम् (न्) णत्व। (ब०व० रत्व 'शि' को सर्वनामस्थानता होने से नान्तलक्षण दीर्घ)। टा में नुम्, तृतीयादि मे पुवद्भाव ('तृतीयादिषु'-) विकल्प में रत्व।

द्वे २ द्वाभ्याम् ३ द्वयो. २—'त्यदादि'-से अ, स्त्रीत्वविवक्षा मे ('अजाद्यतः'-) आप् शी, गुण। केवल द्विवचन। रमावत्।

गौरी गौर्यौ गौर्यः, हे गौरि। गौर्यै—गौर शब्द से गौरादित्वात् ङीप्, 'यस्येति च' से अलोप। सु का हल्ङ्यादि लोप। औ-जस् मे यण्। सम्बोधन मे 'अम्बार्थ'-से ह्रस्व। ङे आदि मे नदीकार्य आट्-आदि। बहुश्रेयसीवत्।

सखी सख्यौ सख्य.—'प्रातिपदिकग्रहणे'-से अनङादि की प्राप्ति पर 'विभक्तौ लिङ्गविशिष्टाग्रहणम्' प० से निषेध होता है। हल्ङ्यादि-से सुलोप गौरीवत्।

लक्ष्मी—ङ्यन्त न होने से सुलोप (हल्ङ्यादि-से) नहीं। तरी-तंत्री आदि शब्दों मे भी सुलोप नही।

स्त्री-हे स्त्रि—हल्ङ्यादि से सुलोप। 'अम्बार्थ'-से ह्रस्व।

स्त्रियौ स्त्रियः—'स्त्रियाः' स्त्री शब्द को इयङ् (इय्) होगा अजादि प्रत्यय परे रहते, ङित्वादन्त य को। विभक्ति योग।

स्त्रियम्-स्त्रीम्, स्त्रियौ, स्त्रियः-स्त्रीः—'वाऽम्शसोः' अम् तथा शस् में इयङ् विकल्प से होगा। पक्ष मे 'अमि पूर्वः' पूर्वरूप। शस् में भी पक्ष में पूर्वसवर्ण दीर्घ। स का रुत्व-विसर्ग।

स्त्रिया। स्त्रियै। स्त्रियाः २। स्त्रियोः २ स्त्रीणाम्, स्त्रियाम् स्त्रियोः स्त्रीषु—ङिद्

विभक्तियों मे नदीत्व प्रयुक्त आडागम–वृद्धि तथा इयङ्। आम् में नुट्, णत्व 'अट्कुप्वा'–से। ङि मे 'आम्' 'ङेराम्'–से।

अतिस्त्रि अतिस्त्रियौ अतिस्त्रयः। हे अतिस्त्रे हे अतिस्त्रियौ हे अतिस्त्रयः। अति-स्त्रियम्-अतिस्त्रिम्, अतिस्त्रियौ, अतिस्त्रियः अतिस्त्रीन्। अतिस्त्रिणा। अतिस्त्रये। अतिस्त्रेः। अतिस्त्रियोः २। अतिस्त्रौ। अतिस्त्रीणाम्—स्त्रियमतिक्रान्तः अतिस्त्रिः, (पु०) 'अत्यादयः'–से समास, 'गोस्त्रियो'–से ह्रस्व, सु का रुत्व-विसर्ग। अङ्गा-धिकारस्थ होने से तदन्त मे भी इयङ्, पर जस्-टा-ङे-ङसि-ङस्-आम् ङि, इनमे तथा सम्बोधन मे 'घि' होने के कारण इयङ् से परशास्त्र होने से गुण, ना-भाव, गुण (घेर्ङिति–से), नुट्, अत्व औत्व होगे। अम् और शस् मे विकल्प से इयङ् 'वाऽम्शसोः' से।

अतिस्त्रि अतिस्त्रिणी अतिस्त्रीणि। अतिस्त्रिणा। अतिस्त्रिणे अतिस्त्रये, अति-स्त्रिणः २ अतिस्त्रेः २ अतिस्त्रिणोः २ अतिस्त्रियोः २—नपुंसक मे—स्त्रियम् अति-क्रान्तमतिस्त्रि (कुलम्) 'स्वमो'–मे सुलोप। औ मे 'नपुंसकाच्च' से शी, 'इकोऽचि'–से नुम् णत्व। जश्शस् मे शि, उपधादीर्घ। ङे ङसि ङस् आम् ङि ओस् मे विकल्प से 'तृतीयादिषु'–से पुवद्भाव घि–कार्य, ओस् मे इयङ्।

अतिस्त्रीः, अतिस्त्रिया, अतिस्त्रियै–अतिस्त्रये, अतिस्त्रियाः–अतिस्त्रेः२, अतिस्त्रीणाम्। अतिस्त्रियाम्–अतिस्त्रौ—स्त्रीलिंग मे 'स्त्रियम् अतिक्रान्ता अतिस्त्रिः (काचित् स्त्री)' मतिवत् है। 'ङिति ह्रस्वश्च' मे 'अस्त्री' की अनुवृत्ति दीर्घ को ही 'नदी' का निषेध करती है, न कि ह्रस्व को। अजादि मे इयङ् पूर्ववत्।

श्रीः श्रियौ श्रियः—ङ्यन्त नही, सु को रुत्वविसर्ग। अजादि विभक्तियों मे इयङ्।

हे श्री, श्रियै–श्रिये, श्रियाः–श्रियः—'नेयङुवङ्–स्थानावस्त्री' इयङ् उवङ् आनेयोग्य ई–ऊ नदीसञ्ज्ञक न होंगे, स्त्री–शब्द को छोड़कर। अतः 'अम्बार्थ'–से सम्बोधन मे ह्रस्व नहीं। ङिद्वचनों मे 'ङिति ह्रस्वश्च' से नदीत्व पक्ष में आट्–वृद्धि, पक्षमे केवल इयङ्, विभक्तियोग।

श्रीणाम्–श्रियाम्, श्रियाम्–श्रियि—'वाऽमि' इयङ् उवङ् के योग्य ई–ऊ 'आम्' में 'नदी' विकल्प से होंगे–पक्ष मे नुट्, णत्व। पक्ष में इयङ्। ङि मे नदीत्वपक्ष में 'ङेराम्'–से आम्, आट्, इयङ्, पक्षमे इयङ्।

प्रधीः, प्रध्यम्, प्रध्य —वृत्तिकार हरदत्त के मत से लक्ष्मीवत् रूप। (यतः जो शब्द पदान्तर समभिव्याहार के विना भी स्त्रीलिङ्ग बोधक है वह नित्य-स्त्रीलिङ्ग है। स्त्रीलिङ्गेतर लिङ्गका अवाचक ही नित्यस्त्री–इस कैयट के मत मे पुवद् रूप है। नदीत्व प्रयुक्त सबुद्धि ह्रस्व आडागमादि स्त्रीलिंग मे भी नही। 'प्रकृष्टा धीः' इस विग्रह मे लक्ष्मीवत् ही रूप है।) अम् और शस् मे 'एरनेका'–से यण् लक्ष्मी से विशेष है। सुष्ठु धीः–सुधीः श्रीवत्। ग्रामणी पुवत्। धेनुः मतिवत्।

क्रोष्ट्री क्रोष्ट्र्यौ क्रोष्ट्र्य —'स्त्रियां च' स्त्रीवाची क्रोष्टुशब्द तृजन्तवत् रूपवाला है। 'ऋन्नेभ्यो ङीप्' ऋकारान्त नकारान्त शब्दों से स्त्रीलिङ्ग मे ङीप् होगा–से ई, सुका हल्ङ्याादि लोप, अजादि वचनों मे यण्। वधू गौरी-वत्। भ्रूः श्रीवत्, (उवङ्)।

हे सुभ्रू—'नेयङुव'–से नदीत्व का निषेध होने से 'अम्बा'–से ह्रस्व नही। 'हे सुभ्रु' यह भट्टिकाव्य का प्रयोग प्रामादिक है। 'खलपूः' पुवत् 'नित्यस्त्री' न होने से।

पुनर्भूः, हे पुनर्भु, पुनर्भ्वौ पुनर्भ्वः। पुनर्भ्वम्, पुनर्भूणाम्—'दृन्करपुन'–से यण् उवङ् का बाधक है, अत नदी होने से 'अम्बा'–से सम्बोधन मे ह्रस्व। 'ह्रस्वनद्या'–से आम् मे नुट् 'एकाजुत्तरपदे णः' एक अच् वाला उत्तर पद है जिसको उसको समास मे पूर्वपदगत निमित्त (रेफ) से पर मे स्थित, प्रातिपदिकान्त नुम्विभक्ति मे स्थित न को नित्य ही ण होगा–से णत्व। समानपद न होने से 'अट्कु'–से न होगा।

वर्षाभूः, कैयटमते-हे वर्षाभू –मतान्तरे-हे वर्षाभु—'नित्यस्त्री' के लक्षण मे मतभेद से नदी सज्ञा मे मतभेद होने के कारण 'अम्बार्थ' पक्ष में नही लगता।

वर्षाभ्वौ वर्षाभ्वः—'वर्षाभ्वश्च' से यण्। स्वयम्भूः पुंवत्।

स्वसा स्वसारौ स्वसारः—'न षट्स्वस्रादिभ्यः'–षट्सज्ञकों तथा स्वसृ आदियों से ङीप् ('ऋन्नेभ्यो'–से) या टाप् नहीं होते। 'स्वसा तिस्रश्चतस्रश्च ननान्दा दुहिता तथा। याता मातेति सप्तैते स्वस्रादय उदाहृताः॥' ये स्वस्रादि है। 'अप्तृन्तृच्स्वसृ'–से दीर्घ सुट् में।

माता, मातृः—यह पितृवत् है। शस् मे स्त्रीलिंग होने से 'तस्माच्छ'-से न नही। पूर्वसवर्ण दीर्घानन्तर रुत्व विसर्ग।

द्यौ गोवत्, राः पुंवत्, नौः ग्लौवत्—'ओतो णिद्वत्' से णिद्वद्भाव वृद्धि। 'रायो हलि' से आत्व। नौ औकारान्त है, रुत्व विसर्ग। इत्यजन्त-स्त्रीलिङ्ग।

अजन्त नपुंसकलिङ्ग

ज्ञानम्, हे ज्ञान, ज्ञाने, ज्ञानानि—'अतोऽम्' नपुंसकलिंग अदन्त अग से परे सु तथा अम् को 'अम्' होगा। 'अमि पूर्व' से पूर्वरूप। संबोधन मे ज्ञान-सु, सु को अम्, पूर्वरूप, 'एङ्ह्रस्वा'-से हल्मात्र (म्) का लोप। औ मे-'नपुंसकाच्च' क्लीब से परे औ को शी होगा। ज्ञान-ई, 'यस्येति च' भ-सज्ञक ('यचि भम्') के इवर्ण तथा अवर्णों का लोप होगा ई और तद्धित परे रहते-से ज्ञान के अ का लोप प्राप्त होने पर 'औङः श्या प्रतिषेधो वाच्यः' वा० औ के स्थानापन्न शी परे रहते 'यस्येतिच' से प्राप्त लोप का निषेध कहना चाहिये। गुण। 'जश्शसोः शिः' क्लीब अग से परे जस् शस् को 'शि' होगा, 'शि सर्वनामस्थानम्' 'शि' सर्वनामस्थान है। 'नपुंसकस्य झलचः' झलन्त तथा अजन्त क्लीब को 'नुम्' आगम होगा सर्वनामस्थान परे रहते। 'सर्वनाम'-से नान्त उपधा का दीर्घ। शेष रामवत्। धन-वन आदि इसी प्रकार।

कतरत्-कतरद् कतरे कतराणि—'अद्ड् डतरादिभ्यः पञ्चभ्यः' डतर, डतम (दोनों प्रत्यय हैं, अत 'प्रत्ययग्रहणे तदन्तग्रहणं' से तदन्त का ग्रहण) अन्य, अन्यतर, इतर-इन से—जो कि नपुंसकलिङ्ग है—परे सु और अम् को अदड् (अद्) आदेश होगा—'डेः' ड—इत् प्रत्यय परे रहते 'भ' के टि—भाग (कतर के अ) का लोप होगा। 'वाऽवसा'—चर्त्व विकल्प। औ—जस् मे ज्ञानवत्।

पञ्चमः—'भ का लोप' कहने से 'पञ्चन्' के 'डट्' को 'मट्' होने पर 'स्वादिष्व'—से पद होने से 'नलोपः'—से न लोप होकर उक्त रूप बनता है। अन्यथ यहाँ भी टि-अन् का लोप होकर अनिष्ट रूप हो जाता।

हे कतरत्—'टि' (अ) का लोप होने से 'प्रथमयो.'-तथा 'एङ्-ह्रस्वात्'-से पूर्व सवर्ण दीर्घ एव सम्बुद्धि लोप नही होंगे।

कतमत्, अन्यत्, अन्यतरत्, इतरत्। अन्यतमम्—ये चारो उपरोक्त 'अदड्' अन्त हैं। अन्यतम शब्द से अदड् नहीं, 'अतोऽम्' से अम् ही होगा। यह अव्युत्पन्न (प्रकृति प्रत्ययभाग रहित) प्रातिपदिक है।

एकतरम्—'एकतरात्प्रतिषेधो वक्तव्यः' वा० एकतर से (डतरान्त होने पर भी) सु अम् को अदड् नही होगा, 'अतोऽम्' से अम् ही होगा।

अजरम्, अजरसी-अजरे, अजरांसि-अजराणि। अजरसम्-अजरम्, अजरसी-अजरे, अजरांसि-अजराणि—बुढापा रहित (कुल)। सु को 'अम्' आदेश करने पर सन्निपात-(अदन्त को आश्रय करके आया 'अम्' अदन्त को बिगाड़नेवाले जरस् आदेश के प्रति निमित्त न होगा) परिभाषा से जरस् नही। औ के शी-भाव होने पर जरसादेश-विकल्प से दो रूप। जस् को शि। पर होने से जरस्, पश्चात् झलन्त होने से 'नपुसकस्य'-से नुम्। अजरन् स् इ, 'सान्तमहत सयोगस्य' सकारान्त संयोग, तथा महत् का जो नकार, उसकी उपधा को दीर्घ होगा सर्वनामस्थान परे रहते। 'नश्चापदा'-से न को अनुस्वार। पक्ष मे 'नपुसकस्य'-से नुम्। उपधा दीर्घ, णत्व। अम् मे 'स्वमो' से प्राप्त लुक् (लोप) के अपवादभूत 'अतोऽम्' से अम् को बाध कर पर होने से 'विप्रतिषेधे' से जरस्, तब अम् का सन्निपातपरिभाषा से लुक् न होगा। अन्य रूप पुंवत्।

हृन्दि, हृदा हृद्भ्याम्। उदानि उद्ना। उदभ्याम्। आसानि। आस्ना आसभ्याम्। मांसि। मांसा मान्भ्यां—हृदय उदक आस्य शब्दों को 'पद्दन्नो' से शसादि में हृत् उद् आसन्। शस् को शिभाव, हृद्, नुम्, 'नश्चापदान्त'-से न को अनुस्वार एव उस को परसवर्ण। उदानि मे शस् को शि, उदन्, 'सर्व-नाम'-से दीर्घ। टा मे उदन्, अल्लोप। भ्याम् मे पदर ात् 'नलोपः'। आसन्, शि दीर्घ। टा-मे आसन्, अल्लोप। भ्याम् में नलोप। 'मास-पृतना'-आदि से शसादि मे मास्, शि। टा-मे यथाश्रुत। भ्याम् में 'मान्स्' यहाँ संयोगान्त लोप। लोप के असिद्ध होने से नलोप नहीं।

'मांसपचन्या उखायाः'—इति भाष्यम्। 'पद्दन्नो' में 'प्रभृति' प्रयोग से शसाद्यतिरिक्त मे भी पत् आदि आदेश होंगे। अतः 'मांसस्य' पचनी' इस विग्रह में ङस् का लुक्, 'नलुमता' अनित्य है, अतः मास् आदेश। मास पकानेवाला पात्र।

श्रीपं। श्रीपाय—अर्थ-सम्पत्तिवाला कुल। 'ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य.' अजन्त को नपुंसक मे ह्रस्व होगा–से 'श्रीपा' के आ को ह्रस्व। ज्ञानवत्। ङे मे सन्निपातपरिभाषा के कारण 'आतो धातोः' से 'पा' के आ का लोप न होगा।

वारि वारिणी वारीणि। हे वारे! हे वारि!—'स्वमोर्नपुंसकात्' नपुसक अङ्गसे परमे स्थित सु–अम् का लुक् होगा–सु-अम् का लोप। 'इकोऽचि विभक्तौ' इगन्त नपुसक को नुम् आगम होगा, वारि औ–शी, नुम्, णत्व। जश-शस् को शि, नुम्, 'सर्वनाम'–दीर्घ, णत्व। सम्बोधन मे 'नलुमता' के अनित्यत्व पक्ष मे 'ह्रस्वस्य गुणः' से गुण।

वारिणा। वारिणे। वारिण २। वारिणोः। वारीणाम्—नुम् की अपेक्षा पर होने से 'आङो'–से नाभाव, णत्व। 'घेर्ङिति' से गुण प्राप्त होने पर 'वृद्ध्यौत्वतृज्वद्भावगुणेभ्यो नुम् पूर्वविप्रतिषेधेन' वा० वृद्धि, औत्व, तृज्वद्भाव, गुण को बाधकर नुम्। आम् मे 'नुमचिर' से नुट्, 'नामि' से दीर्घ, णत्व। ओस् मे यण् को बाधकर नुम्, णत्व। हलादि वचनों मे हरिवत्।

अनाद्ये, अनादिने, इत्यादि, शेषं वारिवत्—अनादि, आदिरहित ब्रह्म। 'तृतीयादिषु भाषितपुंस्कं पुंवद् गालवस्य' समान अर्थ मे पुल्लिंग मे भी प्रयुक्त इगन्त नपुसक शब्द टा आदि अच् परे रहते गालवआचार्य के मत मे (विकल्प से) पुंवत् होगा–से ङेमें पक्षमे गुण अयादेश, पक्षमे नुम्।

पीलुने (पीलुर्वृक्ष, तत्फल पीलु)—यहा पीलु वृक्षत्व तथा फलत्व जातिवाचक है, भिन्नार्थक होने से पुंवद्भाव नहीं, नुम्।

दध्ना, दध्ने, दध्नः, दध्नो २, दध्नि दधनि, शेषं वारिवत्। एवमस्थिसक्थ्यक्षीणि—दधि-दही। 'अस्थिदधिसक्थ्यक्ष्णामनङुदात्तः' अस्थि दधि सक्थि अक्षि शब्दों को अनङ् (उदात्त) टादि अच् परे रहते होगा, दधन्,

'अल्लोपोऽनः' से अ लोप सर्वत्र । ङि मे 'विभाषा ङिश्योः' से अल्लोप विकल्प । अस्थि हड्डी, सक्थि जाँघ, अक्षि आँख, इसी प्रकार ।

अतिदध्ना—अतिदधि-दही का अतिक्रमण किया हुआ (कुल आदि)। विधि अंगसम्बन्धि होने से दधिअन्त को भी टा आदि मे अनङ् । अल्लोप ।

सुधि सुधिनी सुधीनि । हे सुधे ! हे सुधि ! सुधिया-सुधिना, सुधियां-सुधीनाम्-सुधि-सुबुद्धिवाला (कुल) । पर होने से इयङ् को बाधकर नुम् । समानार्थक (पुन्नपुंसकों मे) होने से टा आदि मे पुंवद्भाव विकल्प, पक्ष मे इयङ्-नुम् । आम् मे नुट् दीर्घ । पक्ष मे 'न भूसुधियोः' यण् निषिद्ध है, इयङ् ।

प्रध्या प्रधिना—प्रधि प्रकृष्टबुद्धि वाला (कुल) । पुसमानार्थक होने से टादि मे विकल्प पूर्ववत् । 'एरनेकाचो' से यण् । नपुंसक मे नुम् ।

मधु मधुनी मधूनि ! हे मधो ! हे मधु ! एवमम्ब्वादयः—मधु = मद्य, पुष्परस, (वसन्त-चैत्र पुलिंग) । सु-अम् का लुक् । औ को शी नुमादि पूर्ववत्, 'न लुमता' के अनित्य होने से सम्बुद्धि मे गुण विकल्प । 'एङ् ह्रस्वा-' सुलोप ।

स्नूनि, सानूनि—सानु पर्वतनितम्ब । 'मासपृतनासानूना मास्पृत्स्नवो' से स्नु-विकल्प, शि, नुम्, उपधा दीर्घ ।

प्रियक्रोष्टु, प्रियक्रोष्टुनी, प्रियक्रोष्टूनि, प्रियक्रोष्ट्रा, प्रियक्रोष्टुना, प्रियक्रोष्ट्रे, प्रियक्रोष्टवे, प्रियक्रोष्टुने, प्रियक्रोष्टूनाम्—अर्थः—सियार को प्यार करनेवाला (कुल)। जश्शस् को शि होने पर शिके सर्वनामस्थान होनेसे प्राप्त नुम् को बाध कर पर होने के कारण तृज्वद्भाव प्राप्त होने पर 'वृद्धयौत्त्वतृज्व' वार्तिक से नुम् । टादि मे पूर्वोक्त रीतिसे पुवद्भावविकल्प, पक्षमे तृज्वद्भाव, यण्-र । टामे पुवद्भाव तथा नपुसकता मे भी (नुम् से पर होने से) ना-भाव । ङे आदि मे तृज्वत्त्व पुवद्भाव तथा पाक्षिक नुम् से ३ रूप । आम् मे 'नुमचिरे' त्यादि से नुट् ही होगा । दीर्घ ।

सुलु सुलुनी सुलूनि, सुल्वा, सुलुना-सुलु अच्छी तरह काटनेवाला, लूञ् । क्विबन्त, 'ह्रस्वो नपुसके' से ह्रस्व । औ आदि मे 'ओः सुपि' से प्राप्त यण् को बाधकर पर होने से नुम्, शी, पूर्ववत् । तृतीयादि मे पुवद्भाव विकल्प, पुवत्पक्षमें लू ह्रस्व न होने से घि नहीं, 'ओः सुपि' से यण् । नपुंसक पक्ष मे नुम् ।

धातृ धातृणी धातॄणि, हे धातः ! हे धातृ ! धात्रा, धातृणा—दधातीति धातृ= रचनेवाला। स्वम् लुक्, 'न लुमता' से अनङ ('ऋदुशन-') निषेध। औ आदि मे शी आदि, नुम्, 'ऋवर्णा' से णत्व। शि, नुम्, दीर्घ, णत्व। 'नलुम' के अनित्य पक्ष मे सम्बुद्धि निमित्तक गुण-अर्। तृतीयादि में प्रवृत्तिनिमित्तैक्य के कारण पुवद्भाव पाक्षिक। एवं ज्ञातृ-कर्त्रादय.।

प्रद्यु प्रद्युनी प्रद्यूनि, प्रद्युनेत्यादि—प्रकृष्टा द्यौः यस्मिन् तत् प्रद्यु=अच्छा आकाश-वाला (दिन आदि)। 'एच इग्घ्रस्वादेशे' आदेश किये जाने वाले ह्रस्वों ('ह्रस्वो नपु'-से) में एच् को इक् ही होगा, आन्तरतम्य से ओ को उ। स्वम् लुक्, शी-नुम्। शि, नुम्, दीर्घ। यहाँ तृतीयादि मे निमित्त साम्य होने पर भी 'प्रद्यो' से 'प्रद्यु' भिन्न होने के कारण पुवद्भाव नही।

प्ररि प्ररिणी प्ररीणि, प्ररिणा प्रराभ्यां प्रराभिः, 'प्रराणाम्' प्ररीणाम्—प्रकृष्टो राः यस्य तत् प्ररि=बहुत धनवाला। बहुव्रीहि मे सिद्ध प्रै को नपुसक ह्रस्व इ। सुट् मे वारिवत् रूप। टादि मे प्रद्युवत् पुंवद्भावनिषेध। नुम् णत्व। भ्यामादि मे एकदेशविकृत अभिन्नवत् है—मान कर 'रायो हलि' से आत्व। आम् मे 'नुमचिर' वा० से नुट् एव आत्व-ऐसा माधव का मत है। वस्तुगत्या तो सन्निपातपरिभाषा (ह्रस्वान्त के आश्रय से आया हुआ नुट् उसको बिगाडकर आ करने मे कारण न होगा) से आत्व नहीं, 'नामि' इस सूत्रारभ सामर्थ्य से उपरोक्त परिभाषा तो बाधित होती ही है—यह दूसरी बात है।

सुनु सुनुनी सुनूनि, सुनुना, सुनुने-इत्यादि—सु नौः यस्येति (बहुव्रीहि) सुनु= सुन्दर नौकावाला। ह्रस्व—उ। स्वम् का लोप। नुम्। प्रद्यु मे प्रदर्शित युक्ति से पुवद्भाव नहीं। अजन्त नपुंसक समास।

हलन्तपुँल्लिग

लिट् लिड् लिहौ लिहः, लिहम् लिहौ लिहः, लिहा लिड्भ्याम्, लिट्त्सु लिट्सु—लिड्—आस्वादन करनेवाला, 'हो ढः' ह को ढ होगा झल् परे रहते तथा पदान्त मे। 'हल्ङ्या' से सुलोप। ह्-को ढ, जश्त्व चर्त्व। टा तक यथा-श्रुत विभक्ति योग। भ्यामादि मे 'स्वादि' से पद होने से 'झला' से

जश्त्व। सुप् मे हको ढ, जश्त्व से ड, 'ड. सि धुट्', चर्त्व से ड को ट। धुट् के ध् को भी 'खरि च' से त्। पक्ष मे ह को ढ, जश्त्व, चर्त्व, धुट् नहीं।

उपदेशे किम् ? अधोग्। दामलिट्—अधोग् (दुह् का लङ्) दुह लिया। दामलिट् = रस्सी चाटनेवाला (बछिया) तथा ऐसे को अपने लिये चाहनेवाला। 'उपदेशे दादेर्धातोर्घः' उपदेश (पाणिन्युच्चारण) काल मे दकारादि धातु के ह को घ होगा झल् परे और पदान्त मे। 'उपदेश' कहने से दुह् के ह को (अधोग्-यहा) घ हुआ। 'दामलिहमात्मन इच्छति' इस अर्थ मे 'दामलिट्' उपदेश मे दकारादि (लिह्) न होने से घ न हुआ।

इह तु न-गर्धप्—'गर्दभ' कहनेवाला। गर्दभमाचष्टे गर्दभयति, क्विप्, 'हल्ङ्याप्' से सुलोप, 'एकाचो बशो भष् झषन्तस्य स्ध्वोः' धातु का अवयव जो एकाच् (दभ्) झष् अन्त वाला है उसके अवयव बश् के स्थान मे भष् होगा स-ध्व परे रहते तथा पदान्त मे। भष् (द को घ) भ को जश्त्व-ब् चर्त्व-प्।

तेनेह न-दुग्धम् दोग्धा—दुह के क्त-प्रत्ययान्त का रूप तथा तृजन्त का रूप। यहा दोनों स्थानों मे 'एकाचो' मे 'झलि' की अनुवृत्ति करने पर (ध-आगे होने से) द को भष् (ध) हो जायगा, जो कि अनभीष्ट है। अतः 'झलि' की अनुवृत्ति न होगी।

धुक्-धुग् दुहौ दुहः। धुक्षु। क्विबन्त दुह् से सु का लोप होने पर 'दादे' से घ होने पर दुघ् झषन्त एकाच् धातु हुआ, धातु का अवयव नहीं, तो दु को भष् (धु) व्यपदेशिवद्भाव (धातु मे धात्ववयव का गौण व्यवहार) से होगा, जश्त्व-चर्त्व। औ-जस् आदि अजादि वचनों मे कार्यविशेष नहीं। सुप् मे घत्व, भष् भाव, घ को जश्त्व, 'आदेश'-से षत्व, चर्त्व (ग् को क्)।

ध्रुक् ध्रुग् ध्रुट् ध्रुड्। द्रुहौ द्रुहः। ध्रुग्भ्याम् ध्रुड्भ्याम्। ध्रुक्षु ध्रुट्त्सु ध्रुट्सु—ध्रुक् = हत्या करना चाहनेवाला। 'वा द्रुहमुहष्णुहष्णिहाम्' इन चारों को झल परे रहते तथा पदान्त मे ह को घ विकल्प से होगा। घत्व-पक्ष मे भष्-(द्रु को ध्रु) करने पर जश्त्व चर्त्व विकल्प। पक्ष मे 'हो ढः' से ढत्व, भष्भाव, जश्त्व, चर्त्व-विकल्प। अजादिवचनों में यथाश्रुत। भ्यामादि मे घत्व-ढत्व विकल्प,

झष्भाव, जश्त्व। सुप् में घत्व पक्ष में धुत्वुवत्। ढत्व-पक्ष में झष्, जश्त्व, धुट्, चर्त्व, ड को भी चर्त्व। धुडभाव में त् नहीं।

एवं मुहष्णुहष्णिहाम्—मुह् = मोहनेवाला, ष्णुह्=उद्गार करनेवाला, ष्णिह् = प्रीति करनेवाला, इनको भी विकल्प से घत्व–ढत्व, जश्त्व–चर्त्व।

विश्ववाट्–विश्ववाड् विश्ववाहौ विश्ववाह । विश्ववाहम् विश्ववाहौ विश्वौह.। विश्वौहा–इत्यादि—विश्व का वहन करनेवाला परमात्मा। 'विश्वं वहति' इस अर्थ में 'वहश्च' से ण्विप्रत्यय। 'अत उपधायाः' से वृद्धि, उपपद समास। विश्ववाह् से 'सु' का 'हल्ङ्याब्' से लोप। 'हो ढः' से ढत्व, जश्त्व, चर्त्व विकल्प। औट् तक यथाश्रुत। 'वाह ऊठ्' शस मे भसज्ञक वाह् को सम्प्रसारण ('इग्यणः सम्प्रसारण' यण् के स्थान मे प्रयुज्यमान इक्) ऊठ् होगा–विश्व ऊ आह बनने पर 'सम्प्रसारणाच्च'सम्प्रसारण से अच् परे रहते पूर्वरूप एकादेश होगा, 'एत्येधत्यूठ्सु' से (ऊठ् होने के कारण) वृद्धि (औ)। स् का रुत्व विसर्ग। टा आदि अजादि मे भी सम्प्रसारण आदि।

अनड्वान्, हे अनड्वन्, अनड्वाहौ अनड्वाहः, अनडुहः, अनडुहा, अनुडुद्भ्याम् इत्यादि—अनड्वान्–बैल। अनडुह्, सु–'चतुरनडुहोरामुदात्तः' इन दोनों शब्दों को सर्वनामस्थान परे रहते (उदात्त स्वरवाला) 'आम्' होगा। मित्, अनड्वाह् स्–'सावनडुह.' अनडुह् शब्द को नुम् होगा। अनड्वान् ह् स्। 'हल्ङ्यादि' से सुलोप, ह् का सयोगान्त लोप। नुम् विधिसामर्थ्य से 'वसुस्र' से द नहीं हुआ। नुम् आम् का उपजीवक होने से दोनों मे बाध्यबाधकता नहीं। सयोगान्तलोप असिद्ध होने से 'नलोप.'–नही। 'अम् सम्बुद्धौ' चतुर् अनडुह् को सम्बोधन मे 'अम्' होगा, आम् का अपवाद है। नुम्, सुलोप, सयोगान्त लोप। औट् तक 'आम्' विशेष है। शस् आदि अजादि मे यथाश्रुत। भ्याम् आदि हलादि मे 'वसुस्रंसुध्वंस्वनडुहां द' सान्त वस्वन्त 'स्रंस्' आदि को पदान्त मे 'द' होगा।

सान्तेति किम्? विद्वान्, पदान्त इति किम्? स्रस्तम्, ध्वस्तम्—विद्वस् स् इस स्थिति में 'अत्वसन्तस्य' से दीर्घ 'उगिदचा' से नुम् सुलोप-संयोगान्त लोप से बना विद्वान् शब्द सान्त वस्वन्त न होने से 'द' नहीं। पदान्त कहने से क्तप्रत्यय स्थल में स्रंसादि होने पर भी 'द' नहीं हुआ।

तुराषाट् तुराषाड्, तुरासाहौ, तुरासाह, तुराषाड्भ्याम् इत्यादि—तुराषाट्—इन्द्र। तुरासाह् सु स् का हल्ङ्यादिलोप। ह को ढत्व जश्त्व करने पर 'सहेः साडः सः' साड्रूप सहि (षह् अमर्षणे धातु) के स को मूर्धन्य (ष) आदेश होगा अर्थात् पदान्त में, औट् तथा अजादि वचनों मे पद न होने से षत्व नहीं, यथाश्रुत विभक्ति योग।

सुद्यौः सुदिवौ सुदिवः, सुदिवम् सुदिवौ, सुद्युभ्याम् सुद्युभिः—सुद्यौः–शोभन आकाश से युक्त (दिवस) 'दिव औत्' दिव् इस प्रातिपदिक का 'औ' आदेश होगा सु परे रहते व् के स्थान मे औ, यण्, स् का रुत्व विसर्ग। अग सम्बन्धी विधि होने के कारण दिव्–शब्दान्त को भी। यहाँ सुलोप अल्विधि (व् रूप हल् से पर होने से) होने के कारण 'औ' को स्थानिवद्भाव न होगा, अत सु का लोप नहीं। अजादि वचनों में दिव् अविकृत है। हलादि मे 'दिव उत्' दिव् को अन्तादेश उ होगा पदान्त मे, व् को उ, दि के इ को यण्।

चत्वारः चतुरः, चतुर्भिः, चतुर्भ्यः २, चतुर्णाम् चतुर्षु—चतुर्-शब्द अर्थ ४, केवल बहुवचनान्त। 'चतुरन'–से जस् मे 'आम्' चतुर के उको 'आम्' के आ के परे रहते व् (यण्)। जस् के स् को रुत्व विसर्ग। शस् आदि मे यथाश्रुत विभक्तियोग। ष-बहुव० में 'षट्चतुर्भ्यश्च' 'षट्' सज्ञावाले शब्दों से तथा चतुर् से पर मे स्थित 'आम्' को 'नुट्' आगम होगा। णत्व, 'अचो रहा'–से द्वित्व। चतुर् सु; इस दशा में 'खरवसा-' से र् को विसर्ग प्राप्त होने पर 'रोः सुपि' सप्तमी बहुवचन मे 'रु' को ही विसर्ग होगा और रेफ को नही–इस नियमविधि से प्रकृतरेफ का विसर्ग नहीं। 'आदेश'–से सुको षत्व (रेफ-इण् मे है)। 'अचो–' से ष-को वैकल्पिक द्वित्व प्राप्त होने पर 'शरोऽचि' अच् पर मे रहते शर् को द्वित्व नही।

प्रियचत्वाः, हे प्रियचत्व, प्रियचत्वारौ प्रियचत्वारः। गौणत्वे तु–प्रियचतुराम्। प्राधान्ये तु–परमचतुर्णाम्—अर्थ=४ प्रिय है जिसको। 'प्रियाः चत्वारो यस्य' इस बहुव्रीहि समास मे 'प्रियचतुर्–सु' 'चतुर्'–के उ से आगे आम् आङ्ग होने से तदन्त को भी। यण्, सु का हल्ङ्यादिलोप। रेफ को

विसर्ग। सम्बोधन मे 'अम् सम्बुद्धौ' से अम्। सुलोपादि पूर्ववत्। सुट् में यह आम् ही विशेष है। 'षट्चतुर्भ्यश्च' यहाँ बहुवचन निर्देश से 'आम्' मे स्वप्राधान्य मे ही नुट् होगा।

कमल् कमलौ कमलः। कमल्षु—अर्थ=कमल वा लक्ष्मी कहनेवाला। सु को हल्ङ्यादिलोप। औरों मे कोई विकार नही। सुप् मे ल इण् होने से 'आदेश-' से षत्व।

प्रशाम्यतीति–प्रशान्, प्रशामौ प्रशामः,प्रशान्भ्याम्—शान्त होनेवाला। 'मो नो धातोः' मकारान्त धातु को न होगा पदान्त मे। सुलोप, 'नलोपः-' नहीं लगता, यह नत्व असिद्ध है। अजादि वचनों मे कोई विकार नही। पद होने से भ्यामादि हलादि वचनों मे नत्व।

कः कौ के, कम् कौ कान्, सर्ववत्—अर्थ=कौन। 'किमः कः' किम् को 'क' आदेश होगा विभक्ति परे रहते, शी आदि सर्ववत् होगा।

अयम् इमौ इमे, अनेन आभ्याम् एभि, अस्मै आभ्याम् एभ्यः, अस्मात् आभ्यां एभ्यः। अस्य अनयोः एषाम्,अस्मिन् अनयोः एषु--अर्थ=यह। 'इदमो मः'इदम् के म को म (त्यदाद्यत्व का अपवादरूप) होगा सु परे रहते। 'इदोऽय् पुंसि' इदम् के 'इद्'–भाग को 'अय्' होगा सु परे रहते। हल्ङ्यादि से सुलोप त्यदाद्यत्व अ, 'अतो गुणे' 'अय–अ' दोनों अ को १ पररूप अ। इद औ–'दश्च' इदम् के द को म होगा विभक्ति परे रहते। जस् मे सर्वनाम-कार्य–शी। 'अनाप्यकः' क रहित इदम् के इद् भाग को 'अन्' होगा टा से सुप् तक परे रहते। त्यदाद्यत्व, पररूप, अन्, अन आ, इनादेश, गुण। 'हलि लोप' अककार इदम् के इद् का लोप होगा हलादि 'आप्' परे रहते। अलोऽन्त्यपरिभाषा से द् का लोप प्राप्त होने पर—'नानर्थकेऽलोऽन्त्यविधिरनभ्यासविकारे' वा० अभ्यासविकार से अतिरिक्त स्थल मे अर्थ रहित मे अलोऽन्त्य–परिभाषा नही। प्रकृत मे इद् के द् का अनर्थक होने से पूरे का ही लोप। 'आद्यन्तवदेकस्मिन्' एक ही (वर्ण) मे क्रियमाण कार्य आदि में जैसा तथा अन्त मे जैसा माना जायगा, प्रकृत मे बचा अ अदन्त होने से 'सुपि च' से दीर्घ। भिस् मे 'नेदमदसोरकोः' अककार इदम् तथा अदस्

के भिस् का 'अतो भिस ऐस्' से ऐस् न होगा। 'बहुवचने'-से एत्व रुत्व-विसर्ग। ङे मे त्यदाद्यत्व, 'सर्वनाम्नः'-से स्मै-यह नित्य होने से पहले होगा, अनन्तर 'हलि लोप' होगा। भ्यस् मे 'बहवचन'-से एत्व। ङसि मे त्यदाद्यत्व पररूप, लोप (इद् का), स्मात्। ङस् मे भी उक्त प्रक्रिया, स्य। ओस् त्यदाद्यत्व, पररूप, अनादेश (अनाप्यक -से), 'ओसिच' से एत्व, अयादेश। आम् मे त्यदाद्यत्व-पररूप, 'आमिसर्व'-से सुट्, एत्वपत्व ('वहुबचने' 'आदेश' से) ङि मे अत्व-पररूप, स्मिन्, इद् लोप। सुप् मे अत्व-पररूप, लोप एत्व-षत्व।

ककारयोगे तु-अयकम् इमकौ इमके, इमकम् इमकौ इमकान्, इमकेन इमकाभ्याम् इमकैः इत्यादि—अर्थ = यह। 'अव्ययसर्वम्नामकच् प्राक् टेः' से अकच्, 'इदक' को भी तन्मध्यपतितन्याय से 'इदमो मः' से म-अय्, सुलोप। औ-आदि में 'दश्च' से म। जस् मे शी। भ्याम् तक रामवत्। ककार सहित होने से अनादेश-लोप तथा ऐस्निषेध नहीं।

एनम् एनौ एनान्। एनेन एनयोः २—'इदमोऽन्वादेशेऽशनुदात्तस्तृतीयादौ' अन्वादेश (उक्त का पुनरुपादान) का विषय इदम् को अनुदात्त अश् आदेश होगा तृतीयादि मे। 'द्वितीयाटौस्स्वेनः' द्वितीयाविभक्ति टा और ओस् परे रहते इदम् तथा एतद् को 'एन' आदेश होगा अन्वादेश मे।

सुगण् सुगणौ सुगण, सुगण्ठ्सु सुगण्ट्सु सुगणसु। सुगाण् सुगाणौ सुगाणः, सुगाण्ठ्सु सुगाण्ट्सु सुगाणसु—अर्थ = गिननेवाला। सु का हल्ङ्यादिलोप। सुप् तक विशेष कार्य कोई नहीं, यथाश्रुत विभक्तियोग। सुप् मे 'ङ्णोः कुक् टुक् शरि' से टुक् विकल्प, 'चयो द्वितीयाः'-से ट को ठ विकल्प। सुगाण् मे भी यही प्रक्रिया। उसमे अदन्त गण धातु से णिच्-अल्लोप-क्विप्-लोप-'अनुनासिकस्य'—से दीर्घ।

राजा हे राजन्। 'परमे व्योमन्' चर्मतिल ब्रह्मनिष्ठः—अर्थ राजा। पर होने के कारण हल्ङ्यादिलोप से पहले 'सर्वनाम'-से दीर्घ, तब सुलोप। 'नलोपः'-से न का लोप। सम्बोधन मे नलोप प्राप्त होने पर 'न ङिसम्बुद्ध्योः' न का लोप न होगा ङि और सम्बोधन मे। ङि मे वेद (व्योमन्) ही मे 'सुपा सुलुक्'-

से ङि का लोप, प्रकृतसूत्र में ङि मे नलोप-निषेध सामर्थ्य से 'न लुमता'-से प्रत्ययलक्षणनिषेध न होगा। तब समासस्थल मे 'चर्मतिल' आदि मे भी प्रत्ययलक्षण मानकर न-लोपनिषेध प्राप्त होने पर 'ङावुत्तरपदे प्रतिषेधो वक्तव्य' वा० ङि के विषय मे उत्तरपद परे रहते 'न ङि' से प्राप्त नलोप निषेधका प्रतिषेध कहना चाहिये। न-लोप। ब्रह्मनिष्ठ मे भी इसी प्रकार।

राजानौ राजान., राजानम् राजानौ राज्ञ', राज्ञा राजभ्याम् राजभिः, राज्ञे राजभ्य राज्ञः २ राज्ञो राज्ञाम्, राज्ञि राजनि—सुट् मे 'सर्वनाम'-से उपधादीर्घ। शस् आदि अजादि वचनों मे 'अल्लोपोऽनः' से जकारोत्तर के अका लोप, श्चुत्व। (यहाँ अल्लोप को स्थानिवद्भाव मानकर श्चुत्व निषेध नहीं कर सकते, 'पूर्वत्रासिद्धे न स्थानिवत्' से निषिद्ध हो जाता है। 'असिद्धं बहिरङ्गमन्तरङ्गे' प० से अन्तरङ्ग श्चुत्व करने मे बहिरङ्ग अल्लोप असिद्ध होकर अ बना रहेगा तो श्चुत्व कैसे हो? 'यथोद्देश सज्ञापरिभाषम्' इस यथोद्देशपक्षमे षष्ठाध्याय के 'वाह ऊठ्' सूत्र मे ज्ञापित इस परिभाषा (असिद्धं-वाली) के प्रति श्चुत्व अन्तरङ्ग होने पर भी त्रैपादिक होने के कारण असिद्ध होने से निर्बाध प्रवृत्त होता है।) भ्यामादि हलादि वचनो मे पदसज्ञा ('स्वादिषु'-से) होने से न लोप होने पर 'सुपिच'-'अतो भिस'-'बहुवचने' ये विधियाँ प्राप्त होती हैं तो 'न लोपः सुप्स्वरसंज्ञातुग्विधिषु कृति' सुब्विधि, स्वरविधि, कृत् मे तुक् विधि इनमे नलोप असिद्ध होता है, अन्यत्र (सवर्णदीर्घ यणादि-मे) 'राजाश्वः' इत्यादि मे असिद्ध नहीं-से असिद्ध होने से दीर्घादि नही होते। ङि 'विभाषा ङिश्योः' से अल्लोपविकल्प, लोप होने पर श्चुत्व।

प्रतिदीव्यतीति-प्रतिदिवा प्रतिदिवानौ प्रतिदिवान, प्रतिदीव्न। प्रतिदीव्नेत्थ।दि—अर्थ=क्रीडादिकरनेवाला। प्रतिदिवन्-सु, 'सर्वनामस्थाने-से सुट् मे उपधादीर्घ, सु-नलोप। राजवत्। शसादि अच् मे 'अल्लोपोऽ'-से अ-लोप करने पर 'हलि च'रेफ एवं वकारान्त उपधा को दीर्घ होगा हल् परे रहते। यहाँ 'अचः परस्मिन्'-से स्थानिवद्भाव 'नपदान्तद्वि'-इत्यादि से निषिद्ध होने के कारण, प्रवृत्त नहीं होता, जिससे दीर्घ होने मे बाधा नहीं रही।

यज्वा यज्वानौ यज्वानः। यज्वनः। यज्वना—यज्वभ्यामित्यादि। ब्रह्माणः ब्रह्मणा ब्रह्मभ्याम् इत्यादि—अर्थ=शास्त्रविधिसे जिसने याग किया है।

यज्वन् और ब्रह्मन् शब्दों का सुट् मे उपघादीर्घ-सु-न-लोप आदि राज-वत्। शसादि हलादि में अल्लोप प्राप्त होने पर 'न संयोगाद्वमन्तात्' वकार मकारान्त संयोग से पर में रहने वाले अ का लोप न होगा। प्रकृत 'ज्व' वकारान्त संयोग है। ब्रह्मन् मे मकारान्त संयोग है।

वृत्रहा हे वृत्रहन् वृत्रहणौ वृत्रहणः। वृत्रहणम्। प्रहण्यात्। प्रघ्नन्ति। वृत्रघ्न। वृत्रघ्ना–इत्यादि एवं शार्ङ्गिन् यशस्विन् अर्यमन् पूषन्—अर्थ = इन्द्र।
वृत्रहन् सु, 'इन्-हन्-पूषार्यम्णां शौ' इन चार शब्दों की उपधा को शी ही परे रहते दीर्घ होगा, अन्यत्र नही। ऐसा निषेध आने पर 'सौ च' इन् आदियों की उपधा को, सम्बुद्धि से अतिरिक्त, सु परे रहते दीर्घ होगा, दीर्घ, सुलोप, नलोप। संबोधन मे सुलोप मात्र। 'एकाजुत्तर—' से णत्व। शसादि अजादि वचनों मे अल्लोप करने पर 'हो हन्तेर्ञ्णिन्नेषु' ञित् और णित् प्रत्यय और नकार परे रहते हन्ति के 'ह' को कुत्व (नाद-महाप्राणादि साम्य से घ) होगा–प्रकृत मे न कार पर मे है। यहा णत्व की शंका करते है—'हन्तेः' उपसर्ग मे रहनेवाले निमित्त (र-ष) से परे स्थित हन्ति के न को णत्व होगा–से प्रहण्यात् मे णत्व। 'अत्पूर्वस्य' हन्ति के अ-पूर्वक न को ही णत्व होगा–से 'प्रघ्नन्ति' यहा 'हन्तेः' से प्राप्त णत्व वारित हुआ। 'हन्तेरत्पूर्वस्य' इस सूत्र को विभाग कर व्याख्यान करने का यही फल है कि 'अनन्तरस्य वा'—इस न्याय को बाधकर 'प्राति-पदि' 'एकाजु-' 'कुमति च' इन सबसे प्राप्त णत्व को बाधना। न-कार परे रहते कुत्व विधि सामर्थ्य से अल्लोप को स्थानिवद्भाव नही, वृत्रघ्नः–आदि।

यशस्विन् यहा 'अस्माया' से विनि प्रत्यय है, इन् नही, तथा च 'सौच' इसमे इन् आदि को दीर्घ विहित है, अर्थवत्परिभाषा से विन् का एकदेश अर्थरहित इन् गृहीत कैसे हो? कहते है 'अनिनस्मन्-ग्रहणान्यर्थवता चानर्थकेन च तदन्तविधिं प्रयोजयन्ति' प० अन् इन् अस् मन् इनका उच्चारण अर्थवान् तथा अनर्थक भी तदन्तविधि का प्रयोजक होता है।

अर्यम्णि अर्यमणि। पूष्णि पूषणि—ङि मे 'विभाषा ङिश्योः' से अल्लोप-विकल्प से दो रूप।

मघवान् मघवन्तौ मघवन्तः। हे मघवन्! हे मघवन्तौ हे मघवन्तः। मघवता मघवद्भ्याम् इत्यादि। अर्थ=इन्द्र। 'मघवा बहुलम्' मघवन् शब्द को विकल्प से 'तृ' (ऋ इत्) अन्तादेश होगा। मघवत् सु 'उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः' धातुभिन्न उक्-इत् वाले को तथा नलोपी अञ्चति को भी 'नुम्' आगम होगा सर्वनामस्थान परे रहते। मघव न् त् सु, हल्ङ्यादि-संयोगान्तलोप, उपधादीर्घ, सूत्र मे 'बहुलं' कथन से दीर्घ करते समय संयोगान्तलोप असिद्ध न होगा। सुट् मे तृ आदेश तथा नुम् आगम विशेष है, नुम के न् को अनुस्वार और परसवर्ण स्मरणीय है। सम्बुद्धि मे 'असबुद्धौ' निषेध के कारण उपधादीर्घ नही। शसादि मे नुम् नही। भ्यामादि मे जश्त्व।

तृत्वाभावे—**मघवा मघवानौ मघवानः। मघोनः। अञ्चन्तानां किम्? मघवतः, मघवता। स्त्रियां-मघवती। अतद्धिते किम्? माघवनम्। मघोना मघवभ्यामित्यादि**—तृत्व न करने पर नान्त होने से सुट् मे उपधादीर्घ। सुमे सुलोपनलोप। राजवत् सुट् मे। शसादि में—'श्वयुवमघोनामतद्धिते' अन्नन्त भसञ्ज्ञक श्व-युव-मघव—इनको तद्धितभिन्न प्रत्यय परे रहते संप्रसारण होगा। व को उ, 'सम्प्रसारणाच्च'—से 'अन्' के अ को पूर्वरूप, गुण। रुत्वविसर्ग। टा मे भी सम्प्रसारण पूर्वरूप गुण। अन्नन्त कथन से तृ आदेश वाले को सम्प्रसारण नही। इन्द्रपत्नी इस—अर्थ में 'पुंयोगादाख्यायात्' से ङीष्। 'साऽस्य देवता' से मघवन् शब्द से अण्, आदिवृद्धि, यहा तद्धित प्रत्यय परे रहने के कारण सम्प्रसारण न हुआ। भ्यामादि मे 'स्वादि' से पद होने से नलोप।

शुनः, शुना श्वभ्यामित्यादि—श्वन् कुत्ता। सुट् मे राजवत्। शसादि अजादि वचनों मे श्व के व् को उ-सम्प्रसारण, पूर्वरूप। भ्यामादि मे न लोप।

यूनः। यूना युवभ्यामित्यादि—युवन्=जवान। सुट् मे राजवत्। शसादि मे व को 'श्वयुव' इत्यादि से संप्रसारण, यु० उ० अन्-अस्, सवर्णदीर्घ। पूर्वरूप रुत्वविसर्ग। टामे भी संप्रसारणादि। भ्यामादि मे न-लोप।

अर्वा। हे अर्वन्! अर्वन्तौ, अर्वन्तः। अर्वन्तम् अर्वन्तौ अर्वतः। अर्वता अर्वद्भ्यामित्यादि—अर्वन्=घोडा। सुलोप, नान्त उपधादीर्घ नलोप।

सम्बोधन में सुलोप। 'अर्वणस्त्रसावनञः' नञ् से रहित (अनर्वा नही) अर्वन्-इस अंग को 'तृ' यह अन्तादेश होगा सु परे नहीं अर्वत्। 'उगदिचा' से (तृ–मे ऋ इत्) नुम्—(मित्, न्)। अर्व न् त् औ। 'नश्चापदान्त' से अनुस्वार, 'अनुस्वार०' से परसवर्ण। सुट् मे यही प्रक्रिया। शसादि अच् मे विभक्तियोग मात्र। भ्यामादि में पद होने से जश्त्व।

अनञः किम्? अनर्वा यज्ववत्। पन्थाः, पन्थानौ, पन्थानः। पन्थानम्, पन्थानौ, पथः। पथा, पथिभ्याम् इत्यादि—अनर्वा = घोडे से अतिरिक्त। 'अर्वणः' सूत्र मे 'अनञः' कथन से यहाँ तृ नहीं। अनर्वा अनर्वाणौ अनर्वाणः—इत्यादि यज्ववत् चलेगा। 'न संयोगाद्वम-' से शसादि अच् मे अल्लोप नहीं। पथिन् = मार्ग। 'पथिमथ्यृभुक्षामात्' पथिन् मथिन् ऋभुक्षिन्-इनको आ-कार अन्तादेश होगा सु परे रहते। सूत्र में आ-आत् ऐसा प्रश्लेष है। अतः यह अननुनासिक शुद्ध है। पथि-आ-स्, 'इतोऽत्सर्वनामस्थाने' पथि आदि के इ के स्थान मे अ अन्तादेश होगा सर्वनामस्थान परे रहते। पथ-आ स्, 'थोन्थः' पथि मथि के थ के स्थान मे न्थ आदेश होगा। सवर्णदीर्घ, सुका रुत्व विसर्ग। पथिन् औ, थिके इ को अ, थ को न्थ आदेश, 'सर्वनाम' से नान्तोपधादीर्घ। सुट् मे यही प्रक्रिया। शसादि मे 'भस्य टेर्लोपः' भसंज्ञक ('यचि भम्') भसंज्ञक पथ्यादि की टि (इन्) का लोप होगा। भ्यामादि मे 'नलोपः' से नका लोप है।

मन्थाः, ऋभुक्षाः। सुपथी। सुमथी नगरी। अनृभुक्षी सेना। सुपथि वनम्। हे सुपथिन्, हे सुपथि, हे सुपथी, सुपन्थानि। सुपथा सुपथे। सुपथिभ्याम् इत्यादि—मथने का दंड। पथिन् वत्-आत्व, अत्व, न्थादेश, रुत्व विसर्ग। ऋभुक्षिन् = इन्द्र। आत्व, अत्व, रुत्वविसर्ग। सुपथी = अच्छे मार्गवाली नगरी। सुमथी = प्रशस्त मन्थन दण्ड से युक्त। 'ऋन्नेभ्यो ङीप्' से ङीप्। भ होने से टिलोप। हल्ङ्यादिलोप। अविद्यमान ऋभुक्षा (इन्द्र वा स्वामी) वाली। प्रक्रिया उपरोक्त है। सुपथिन् = प्रशस्त मार्गवाला जंगल। 'स्वमोर्नपुं' से लुक्, आत्वादि प्रत्यय-

लक्षण मान कर नहीं हो सकता, 'नलुमता' से निषेध हो जाता है। नलोप। संबोधन मे 'संबुद्धौ नपुंसकाना नलोपो वा वाच्य.' से नलोप विकल्प से २ रूप। औ मे शीभाव, भ होने से टि (इन्) का लोप। जश्शस् को 'शि' भाव। उसकी सर्वनाम संज्ञा होने के कारण इत्त्व ('इतोऽत्'), थ को न्थ आदेश, नान्त होने से दीर्घ। टा आदि अजादिवचनों मे टिलोप, भ्यामादि मे नलोप।

पञ्च पञ्च। सङ्ख्या किम्। विप्रुषः। पामानः 'शतानि' 'सहस्राणि'। पञ्चभिः। पञ्चभ्यः २। पञ्चानाम्। पञ्चसु—(पचन्) अर्थ पाच। 'ष्णान्ता षट्' षान्त तथा नान्त संख्या 'षट्'। 'षड्भ्यो लुक्' से जश्शस् का लोप। उक्त सूत्र मे संख्या न कहने से 'विप्रुष्' (बिंदु अर्थ) 'पामन्' (चर्मरोग) शब्द षान्त नान्त होने के कारण यहाँ भी जश्शस् का लोप प्राप्त होता। शतसहस्र शब्दों से जश्शस् को 'शि' करने पर 'नपुस' से नुम्, 'सर्वनाम' से दीर्घ। सहस्र मे 'अट्कु' से णत्व विशेष। यहा नुम् करने पर शतन्-सहस्रन् नान्त सख्या बन गयी तो जश्शस् का लोप नही होता, सर्वनाम-स्थान को उपजीवन कर प्रवृत्त नुम् उसी का विघातक नहीं बनता अर्थात् संनिपातपरिभाषा के कारण। भिसादि में पद होने से नलोप। आम् मे 'षट्चतुर्भ्यश्च' से नुट्, 'नोपधायाः' नान्त उपधा को दीर्घ होगा नाम् परे रहते-दीर्घ, नलोप।

परमपञ्च। परमपञ्चानाम्। प्रियपञ्चा। प्रियपञ्चानौ। प्रियपञ्चानः। प्रियपञ्चाम्। एवं सप्तन्-नवन् दशन्—अर्थ श्रेष्ठ पाच। 'षड्भ्यो'—तथा 'षट्चतु-' दोनों आग होनेसे तदन्त में भी प्रवृत्त होते हैं। प्रियपञ्चा = पाच प्रिय है जिसको। अन्यपदार्थ प्रधान बहुव्रीहि मे जश्शस्-लुक् तथा ६ मे नुट् नहीं। सुट् और हलादि वचनों मे राजवत्, शसादि अजादि में अल्लोप करने पर न को श्चुत्व से ञ, पहले अनुस्वार को परसवर्ण से ञ, इस प्रकार 'पञ्ञ'। सप्तन् आदि भी इसी प्रकार।

अष्टौ २। परमाष्टौ २। अष्टाभिः। अष्टाभ्यः २। अष्टानाम्। अष्टासु। आत्वाभावे-अष्ट अष्ट। शेषं पञ्चवत्। गौणत्वे त्वात्वाभावे राजवत्। प्रियाष्टनः।

प्रियाष्ट्ना । इत्यादि । प्रियाष्टाः । प्रियाष्टाभ्याम् ३ । प्रियाष्टाभिः । प्रिया-ष्टाभ्यः २ । प्रियाष्टासु—आठ । 'अष्टन आ विभक्तौ' अष्टन् को आ होगा हलादि विभक्ति मे । न् को आ । 'अष्टाभ्य औश्' आकार किये अष्टन् से परे जश्शस् को औश् हो । लाघव से 'अष्टभ्यः' कहना छोड 'अष्टाभ्यः' कहना जश्शस् मे भी आत्व को ज्ञापित करता है । अष्टन् को आत्व वैकल्पिक है, 'अष्टनो दीर्घात्' यहा 'दीर्घ' ग्रहण इस विकल्प को ज्ञापित करता है । शित्त्वात् सर्वादेश । परमाष्टौ मे भी स्वप्रधान होने से तदन्त मे भी । हलादि मे न् को आ, सवर्णदीर्घ । आम् मे पहले नुट् कर हलादि मानकर आत्व । आत्वाभाव पक्ष मे 'षड्भ्यो' से जश्शस् का लुक् । गौणता मे (प्रिय है आठ जिनको-बहुव्रीहि) आत्वाभाव मे प्रायः राजवत् ('प्रियाष्ट्नो राजवत्सर्व ह्राहावच्चापर हलि')। शस् मे अल्लोप को स्थानिवद्भाव (अ) मानने से ('अच परस्मिन् पूर्वविधौ' मे 'पूर्वस्मात् अपि परस्य विधौ') ष्टुत्व नही । अथवा परिभाषा को कार्यकाल पक्ष (जहाँ अवसर मिला वहा प्रवृत्त होना) तथा यथोद्देश पक्ष (जिस विधि सूत्र मे पठित हो वहीं प्रवृत्त होना) दो होते है । प्रकृत कार्यकालपक्ष मानकर 'असिद्धं बहिरङ्गमन्तरङ्गे' प० से अल्लोप अङ्ग-भ- संज्ञाद्यपेक्ष होने से बहिरङ्ग है, ष्टुत्व अल्पापेक्ष होने से अतरङ्ग है । अत अल्लोप के असिद्ध होने से ष्टुत्व नहीं । जश्शस् मे भी कल्प्यमान आत्व प्रधानता मे ही, गौणता मे नही । इसलिये 'प्रियाष्टन्' को हलादि वचनों मे ही वैकल्पिक आत्व है । जश्शस् मे आत्व न होने से 'औश्' भी नहीं । प्रियाष्टन्–सु, हलादि होने से आत्व, रुत्वविसर्ग ।

भुत्, भुद्, बुधौ, बुध । बुधा भुद्भ्याम् । भुत्सु—बुध् समझनेवाला । सुप् का हल्ङ्यादि लोप । प्रत्ययलक्षण से स अथवा पदान्त मानकर 'एकाचो' से भष् । जश्त्व-चर्त्व । अजादि वचनों में यथाश्रुत विभक्तियोग । हलादि में 'स्वादिष्व' स पद होने से भष् ।

युङ् युञ्जौ युञ्जः । युञ्जम् युञ्जौ युजः । युजा युग्भ्याम् इत्यादि । असमासे किम् । सुयुक् सुयुग् सुयुजौ सुयुजः । युक्—युङ=योग देनेवाला । 'ऋत्विग्द-धृक्स्रग्दिगुष्णिग्युजिक्रुञ्चा च' ऋत्विग् दधृक् स्रक् दिक् उष्णिक्, अञ्च्

युज् (केवल अर्थात् निरुपपद) और क्रुञ्च् धातुओं से क्विन् प्रत्यय होगा। 'लशक्व'—और 'हलन्त्यं' से क और न इत् है। वि में इ उच्चारणार्थ। 'कृदतिङ्' सन्निहित धात्वधिकार मे तिङ् से अतिरिक्त (क्विन्) प्रत्यय 'कृत्' है। युज् व्। 'वेरपृक्तस्य' अपृक्त व का लोप हो। 'कृत्तद्धित' से प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप्। 'युजेरसमासे' युज् को सर्वनामस्थान में, समास न होने पर, नुम् होगा। युञ्-स्, सुलोप और संयोगान्तलोप (ज् का) 'क्विन्प्रत्ययस्य कुः' क्विन् प्रत्यय जिससे विहित है उसको कवर्ग अन्तादेश हो पदान्त मे। युन् के न को कवर्ग मे अनुनासिक ङ्। औ मे 'नश्चाप' से नुम् के न् को अनुस्वार और परसवर्ण। यह परसवर्ण (ञ) असिद्ध होने से 'चोः कुः' से कुत्व नहीं। औट् तक यही प्रक्रिया। शसादि मे नुम् नहीं। भ्यामादि हलादि में कुत्व (ज् को ग्)। सुयुक् मे समास होने से नुम् नही, 'चोः कुः' चवर्ग को कवर्ग होगा झल् और पदान्त मे। चर्त्वविकल्प। अजादि मे यथाश्रुत विभक्तियोग। युक् = समाधानकर्ता। यह 'युज-समाधौ' धातु है, 'ऋत्विग्'—मे 'युजिर्' इकार घटित का ग्रहण है। अतः 'युज' को क्विन् नहीं। 'चोः कुः' से कुत्वमात्र, नुम् नहीं।

खन् खञ्जौ खञ्ज। राट् राजौ राजः। राट्सु, राट्त्सु। एवं विभ्राट्। देवेट् देवेजौ देवेजः। विश्वसृट्-ड् विश्वसृजौ विश्वसृजः। परिमृट्-ड्—खञ्ज = ठीकसे नही चलनेवाला, 'खजि-गतिवैक्लव्ये'। 'इदितो' से इ-इत् होने से नुम्, 'नश्चा'-से अनुस्वार, उसको परसवर्ण ञ्। हल्ङ्यादि से सुलोप, ञ्ज् में ज् का संयोगान्तलोप। राट् (राजृदीप्तौ) शोभा देनेवाला। सुलोप 'व्रश्च—'से षत्व जश्त्व-ड्, चर्त्व विकल्प। सुप् मे धुट् ('डःसि' से) विकल्प से, उसको चर्त्व। विभ्राट् का अर्थ और साधन राट् वत्। देवेट् = देवता को पूजनेवाला। 'देवान् यजति' 'वचि'-से संप्रसारण इ-गुण, व्रश्चादि से षत्व, जश्त्व और चर्त्वविकल्प, सुलोप। विश्वसृट्-संसार के स्रष्टा। यह भी पूर्ववत् व्रश्चादिमे पठित है। परिमृट् शुद्ध करनेवाला। सिद्धि देवेट्वत्।

विभ्राक्-विभ्राग। विभ्राग्भ्याम्-इत्यादि। परिव्राट् परिव्राजौ परिव्राजः—विभ्राक्-प्रकाशमान। यहाँ 'चोः कुः'से कुत्व('व्रश्च'-से षत्व तो राजिसाहचर्य

से 'टु भ्राजृ दीप्तौ' फणादिवाला ही लिया जायगा) यह 'एजृ भ्रेजृ भ्राजृ दीप्तौ' वाला है। परिव्राट्-संन्यासी। 'परौ व्रजेः षः पदान्ते' उ०, परि के उपपद मे व्रजि से क्विप् तथा दीर्घ होगा, पदान्त मे षत्व भी होगा। व्रज् के ज को षत्व, जश्त्व, चर्त्व विकल्प।

विश्वाराट् विश्वराजौ विश्वराज। विश्वाराड्भ्याम् इत्यादि—विश्वाराट् = सर्वत्र देदीप्यमान। 'विश्वस्य वसुराटोः' विश्वशब्द को दीर्घ अन्तादेश होगा वसु और राट् शब्द परे रहते। राज् के ज को 'व्रश्च'-से षत्व जश्त्व, चर्त्व विकल्प। सुलोप। औजसादि मे पदान्त न होने से दीर्घ नही। भ्यामादि मे पदान्त होने से दीर्घ।

भृट् भृड्, भृजौ भृजः। ऋत्विग् ऋत्विक्, ऋत्विजौ ऋत्विजः—भृट्= पाककरनेवाला। भृस्ज् स्, हल्ङ्यादि लोप, 'स्कोः संयोगाद्योरन्ते च' पदान्त मे तथा झल् परे रहते जो संयोग तादृश संयोगादि 'स क' का लोप होगा। स्ज् के सलोप, व्रश्चादि से षत्व जश्त्व चर्त्व। औ-जस् में भृस्ज् के स को श्चुत्व-श, उसको जश्त्व-ज। ऋत्विग्-होम करनेवाला। सुलोप, 'ऋत्विग्'-से ऋतूपपद यज से क्विन्, ('वचिस्वपि'-य को इ-संप्रसारण) 'क्विन्प्रत्य'-से कुत्व पदान्त मे।

ऊर्क् ऊर्ग् ऊर्जौ ऊर्जः—ऊर्क्—बलवान्। सुलोप, 'ऊर्ज् बलप्राणनयोः' 'चोः कुः' से ज को कुत्व ग, चर्त्व। अजादि मे यथावत्।

स्य त्यौ त्ये, त्यम् त्यौ त्यान्, सः तौ ते—स्य-सः-वह। त्यद् को (द्-को) 'त्यदादीनामः' से अ, 'अतो गुणे' से पररूप। त्य-स्, 'तदोः सः सावन न्त्ययोः' त्यदादियों के आदिवाले त-द कारों को स हो जाता है सु परे रहते। त्य-के त् को स्। रुत्व विसर्ग। त्यदाद्यत्व और पररू[illegible] सर्वत्र। विभक्तियोग यथावत्, जस् मे सर्वनाम-कार्य शी। तद् सु त्यदाद्यत्व, पररूप। स-भाव। रुत्व विसर्ग। जस् मे शीभाव। गुण।

परमसः परमतौ परमते, नेह त्वम्—परमसः = उत्तम वह। त्यदादि से अत्[illegible] आदि आङ्ग होने से तदन्त मे भी प्रवृत्त होते है। अतः 'तदोः सः' से सभाव भी तच्छब्दवत्। 'त्यदादीनामः' आदि से अत्वसत्वा[illegible]

'द्विपर्यन्तानामेवेष्यते' इस वार्तिक से सर्वादिगण मे द्वि से आगे पठित युष्मदादि में नहीं।

त्यद् त्यदौ त्यदः, अतित्यद् अतित्यदौ अतित्यदः—त्यद् = किसी का नाम है। 'त्यद्' को अतिक्रमण करनेवाला 'अतित्यद्' हल्ङ्यादि से सुलोप। यहाँ सज्ञा होने से अत्व तथा सत्व नहीं, 'सज्ञोपसर्जनीभूतास्तु न सर्वादय.' से संज्ञा और गौण प्रयोग सर्वनाम ही नहीं। दकारान्त शब्दवत्।

यः यौ ये, एषः एतौ एते, अन्वादेशे तु—एनम् एनौ एनान्, एनेन, एनयोः२— यः = जो। एषः = यह। यद् त्यदादि होने से अ, पररूप, रुत्वविसर्ग। सववत्। एतद्, त्यदादित्व अ, पररूप, सर्ववद्। केवल सु में 'तदो सः' से सभाव, 'आदेश'—से मूर्धन्य ष, रुत्व-विसर्ग। गृहीत का पुनर्ग्रहण रूप अन्वादेश मे 'द्वितीयाटौ'—से एनादेश, अम्में पूर्व (अमि पूर्वः) रूप।

त्वम्, अहम्, 'त्व स्त्री—अहं स्त्री' ति परमत्वम्, परमाहम् अतित्वम्, अत्यहम्— त्वम्—तू। अहम्—मैं। 'ङेप्रथमयोरम्' युष्मद् अस्मद् से परे स्थित ङे तथा प्रथमा-द्वितीया को 'अम्' आदेश होगा। सु को 'अम्' युष्मद् अम् अस्मद् अम्, 'मपर्यन्तस्य' 'त्वाहौ सौ' युष्मद् और अस्मद् के मपर्यन्त भाग को 'त्व' और 'अह' आदेश, सु परे रहते होगा, त्व-अद्-अम्, अह-अद्-अम्। 'शेषे लोप' आत्व और यत्व के निमित्तभूत विभक्ति से अतिरिक्त विभक्ति परे रहते युष्मद् अस्मद् के अन्त्य 'द' का लोप होगा त्व० अ० अम्, अह—अ—अम्, 'अतो गुणे' से पररूप 'अमि पूर्वः' से पूर्वरूप। शका—स्त्री को कहते समय त्व अम्, अह अम्—इस स्थिति मे 'अमिपूर्व' पर शास्त्र होने पर भी उसको बाधकर अतरग होने से टाप् होना चाहिये। उत्तर—युष्मद् और अस्मद् को कोई लिंग ही नही, अत· स्त्रीत्व विवक्षा मे भी टाप् नही। अथवा 'शेषे लोपः' से 'अद्' का ही लोप होगा, यह लोप पर होने पर भी, अन्तरंग पररूप करने पर ही प्रवृत्त होता है, लोप (त्व—अद्—अम्, अह—अद्—अम्, त्वद्—अहद् के अद्—लोप) के अनन्तर अदन्त ही न रहा (त्व् अह् बचा) कि टाप् हो। परमत्व—परमाह—यहाँ 'ङे—प्रथमयो'—इत्यादि विधियाँ

अंगसम्बधि होने से तदन्त से भी होंगी। इसी प्रकार 'त्वाम् अतिक्रान्तः-माम् अतिक्रान्तः' गौण प्रयोग मे भी वे सब (अम्-त्वादेश-शेष लोप) विधिया होंगी।

युवाम्, आवाम्, भाषायां किम्? 'युव वस्त्राणि', मपर्यन्तस्य किम्? साकच्कस्य मा भूत् युवकाम्। आवकाम्, त्वया-मया-इत्यत्र 'त्व्या' 'म्या' इति मा भूत्, युवकाभ्याम्-आवकाभ्याम्, इति च न सिद्ध्येत्, यूयम् वयम्। परम-यूयम्-परमवयम्, अतियूयम्-अतिवयम्—'युवावौ द्विवचने' युष्मद् और अस्मद् के मपर्यन्त भाग को 'युव-आव' होंगे विभक्ति परे रहते। युव अद् आव अद्। 'प्रथमायाश्च द्विवचने भाषायाम्' प्रथमा द्विवचन परे रहते लोक मे युष्मद् अस्मद् को 'आ' अन्तादेश होगा। द् को आ, पररूप-सवर्ण दीर्घ अम्-पूर्वरूप। 'भाषाया' कथन से 'युव' वेद मे आत्व नहीं। शका—युष्मद् अस्मद् पूरे पर ये आदेश होते तो भी ये ही रूप बन सकते थे। उत्तर-'अव्यय'-से अकच् करने पर तदनतर समूचे पर युवाव आदेश करने से 'तन्मध्यपतित· तद्ग्रहणेन गृह्यते' न्याय से 'युवाम्-आवाम्' ही बन जायँगे, अकच् का श्रवण न होगा। अब तो टि से पहले अकच् से युष्मकद् औ-अस्मकद् औ, 'ङेप्र'-से अम्, युवावादेश मपर्यन्त को, 'प्रथमाया'-से द् को आत्व। 'मपर्यन्त' कथन का एक और प्रयोजन-'त्वमावेकवचने' से युष्मद्-अस्मद् के पूरे स्थान पर त्व आ (तृतीया एक वचनमे) म० आ, 'योऽचि' से अ (त्व-म घटक) को यत्व करने पर 'त्व्या म्या' अनिष्टरूप होंगे। किंच, भ्याम् मे 'टि' के पूर्व अकच् करने पर समस्त पर युवावादेश करने पर 'युष्मदस्मदो'-से आत्व करने पर ककारघटित का श्रवण तन्मध्यपतित-न्यायसे न होगा। जस् को 'ङे प्रथम'-से अम् 'यूयवयौ जसि' से यूय-वय आदेश (मपर्यन्तको) करने पर, शेष का लोप, पूर्वरूप करने पर 'यूयं-वय' बनेंगे। ययवय-विधि अग सम्बन्धि होने से तदन्त को भी, इसी प्रकार 'अतियूयं'-गौण मे भी यह आदेश।

त्वाम्, माम्, युवाम्, आवाम्, युष्मान्, अस्मान्—द्वितीया मे-'त्वमावेक-वचने' एक के कथन मे युष्मद् अस्मद् के मपर्यन्त को त्व-म-होंगे

'द्वितीयाया च' युष्मत् अस्मद् को आकार होगा से द् को आ। त्व अ० आ० अम्, म० अ–आ० अम् पररूप, सवर्णदीर्घ 'अमि पूर्व.' से पूर्वरूप। युवामावाम् पूर्ववत्। शस् मे—'शसो न' युष्मद् अस्मद् से परे शस् का 'न' होगा। अम् का अपवाद है। युष्मद् अस्–अस्मद् अस्, 'द्वितीयायाच' से आत्व, 'न' शस् के स् का सयोगान्त लोप।

त्वया। मया। युवाभ्याम्। आवाभ्याम्। युष्माभि। अस्माभिः—तृतीया मे युष्मद् आ·अस्मद्-आ। 'योऽचि' युष्मद् अस्मद् को य आदेश होगा, आदेश (अत् आदि) के अतिरिक्त स्थल मे, अजादि विभक्ति परे रहते। द को य, एक वचनमे मपर्यन्त को त्व-म, पररूप। भ्या मे 'युष्मदस्मदो-रनादेशे' युष्मद्अस्मद् को 'आ' होगा. अनादेश मे, हलादि विभक्ति परे रहते। युवआव, द् को आ, पररूप, सवर्णदीर्घ। भिस् में भी आत्व, सवर्णदीर्घ, रुत्व विसर्ग।

तुभ्यम्–मह्यम्। परमतुभ्यम्–परममह्यम्। अतितुभ्यम्–अतिमह्यम्। युवाभ्याम् आवाभ्याम्। युष्मभ्यम्–अस्मभ्यम्—चतुर्थी मे—युष्मद् ए, अस्मद् ए। 'तुभ्यमह्यौ ङयि' युष्मदस्मद् के मपर्यन्त को ङे परे रहते तुभ्य-मह्य आदेश होंगे। 'ङे-' से अम्, शेपलोप, 'अमिपूर्वः' से पूर्वरूप। तुभ्यमह्य आग होनेसे तदन्त मे तथा गौण मे भी होंगे। द्विवचनपूर्ववत्। 'भ्यसो भ्यम्' भ्यस् को 'भ्यम्' व 'अभ्याम्' आदेश होंगे। पहला तो शेपेलोप में अन्त्य (द् का) लोप पक्ष मे ही। इसमे एत्व प्रसक्त होने पर 'अंगवृत्ते पुनर्वृत्तावविधिः' प० अग में एक कार्य प्रवृत्त होने पर दूसरा अगकार्य न होगा। अतः लोपकार्य होने पर एत्वकार्य नहीं होगा। 'अभ्यम्' दोनों पक्ष में ठीक है–'द्' मात्र का लोप होने पर झलादि न (अभ्य) होने से एत्व नही। पररूप। टि 'अद्' के लोपपक्ष में अदन्ताङ्ग न (त्व्-म्) होने से एत्व नहीं।

त्वत्–मत्। युवाभ्याम्–आवाभ्याम्। युष्मत्–अस्मत्। पंचमी मे—'एकवचन-स्य च' युष्मद् अस्मद् से पचमी के एक वचन को 'अत्' होगा अनेकाल् होने से सर्वादेश, युष्मद् अत्, अस्मद् अत्। त्व-मादेश, शेष (अद्)

लोप, द्—मात्र लोप पक्ष मे तीन अकारों का पररूप। भ्याम् मे पूर्ववत्। भ्यस् मे 'पञ्चम्या अत्' युष्मद् अस्मद् की पंचमी के भ्यस् को 'अत्' होगा। शेषलोप।

तव। मम। युवयोः। आवयोः। युष्माकम्। अस्माकम्—षष्ठी में—'तवममौ ङसि' युष्मद् अस्मद् के मपर्यन्त को तव-मम होगा ङस् परे रहते, 'युष्मदस्मद्भ्यां ङसोऽश्' इनसे परे स्थित ङस् को 'अश्' होगा, शित्, सर्वादेश। शेषलोप, पररूप। ओस् मे 'युवावौ' से युवावादेश, 'योऽचि' से द को यत्व। पररूप। (यहाँ 'आत्वयत्वनिमित्तेतर' न होने से शेषलोप नही) रुत्व-विसर्ग। 'साम आकम्' युष्मद् अस्मद् से परे 'साम्' (सुट् किये आम्-सर्वनाम होने से) को 'आकम्' शेषलोप।

त्वयि। मयि। युवयोः। आवयोः युष्मासु। अस्मासु—सप्तमी मे—युष्मद् इ अस्मद् इ, मपर्यन्त को त्व-मादेश, द को यत्व, पररूप। द्विवचन पूर्ववत्। युष्मद् सु, अस्मद् सु, 'युष्मदस्म' से द् को आत्व, सवर्ण दीर्घ।

अतित्वम्। अत्यहम्। अतित्वाम्। अतिमाम्। अतियूयम्। अतिवयम्। अतित्वाम्। अतिमाम्। अतित्वान्। अतिमान्। अतित्वया। अतिमया। अतित्वाभ्याम्। अतिमाभ्याम्। अतित्वाभि। अतिमाभिः। अतितुभ्यम्। अतिमह्यम्। अतित्वाभ्याम्। अतिमाभ्याम्। अतित्वभ्यम्। अतिमभ्यम्। अतित्वत् २। अतिमत् २। अतितव। अतिमम। अतित्वयोः अतिमयोः। अतित्वाकम्। अतिमाकम्। अतित्वयि। अतिमयि। अतित्वयोः। अतिमयोः। अतित्वासु। अतिमासु (क)। अतियुवाम् ३। अत्यावाम् ३। अतियुवान्। अत्यावान्। अतियुवया। अत्यावया। अतियुवाभ्याम् ३। अत्यावाभ्याम् ३। अतियुवाभिः। अत्यावाभिः। अतियुवभ्यम्। अत्यावभ्यम् अतियुवत् २। अत्यावत् २। अतियुवयोः २। अत्यावयोः २। अतियुवाकम्। अत्यावाकम्। अतियुवयि। अत्यावयि। अतियुवासु। अत्यावासु (ख)। अतियुष्माम् ३। अत्यस्माम् ३। अतियुष्मान् अत्यस्मान्। अतियुष्मया। अत्यस्मया। अतियुष्माभ्याम्। अत्यस्माभ्याम् ३। अतियुष्माभि। अत्यस्माभिः। अतियुष्मभ्यम्। अत्यस्मभ्यम्। अतियुष्मत् २। अत्यस्मत् २। अति-

युष्मयोः । अत्यस्मयोः । अतियुष्माकम् । अत्यस्माकम् । अतियुष्मयि । अत्यस्मयि । अतियुष्मासु । अत्यस्मासु ।

तुमको अतिक्रमण करनेवाला, मुझको अतिक्रमण करनेवाला । इसी प्रकार 'तुम दोनों को और तुम तीन या इससे अधिकों को अतिक्रमण करनेवाले' इत्याद्यर्थ है। अतिक्रमण करनेवाले भले ही एक दो या इससे अधिक हो, समासघटक युष्मद् तथा अस्मद् के वाच्य एक हो तो 'त्व-म', दो हो तो 'युव-आव', आदेश होंगे । किन्तु अतियुष्मद् तथा अत्यस्मद् के एक दो अथवा अधिकार्थवृत्ति होने पर भी सु, जस्, ङे, ङस्—ये प्रत्यय परे रहते त्व-अह, यूय-वय, तुभ्य-मह्य और तव-मम ये आदेश होंगे । ये चार विधियाँ पर होने से तथा पूर्वविप्रतिषेध ('विप्रतिषेधे' सूत्र मे 'पर' इष्टवाची होने से कहीं पूर्व कार्य ही प्रवृत्त होगा) से अपने विषयों (सु-जसादि) मे युव और आव तथा त्व-मो को बाध कर आवेंगे। युष्मान् अस्मान् वा अतिक्रान्तौ अतिक्रान्तः—इस विग्रह मे युष्मद् अस्मद् के स्वय द्विवचन एक मे न होने के कारण युव-आव और त्व-म नही होगे। तथा सुजसादि उक्त चार स्थलों से अतिरिक्त वचनो में त्व-म आदेश और शेष लोप होकर बननेवाले रूप 'क' तक है। प्रक्रिया पूर्वोक्त ही है। यहा 'त्वा मामतिक्रान्तः अतिक्रान्तौ अन्तिक्रान्ताः' इस प्रकार विग्रह करके अन्यतम अर्थ में प्रयोग होता है। 'युवाम् आवाम् वा अतिक्रान्तः अतिक्रान्तौ अतिक्रान्ताः'–इस विग्रह मे उपरोक्त ४ स्थानों से अतिरिक्त स्थलो में युव-आव आदेश होकर 'ख' तक के रूप बनते है। 'युष्मानस्मान् वा अतिक्रान्त. अतिक्रान्तौ अतिक्रान्ता'—इस विग्रह में उक्त ४ स्थानों को छोड़कर रूप दिये गये है। यहा सर्वत्र 'ङेप्रथम' 'प्रथमायाश्च' 'द्वितीया' 'शसो न' 'योऽचि' 'युष्मदस्म' 'भ्यसो' 'एकवच' 'पञ्चम्या' 'युष्मद' 'साम'—ये सब विधियाँ यथास्थान होगी ही।

श्रीशस्त्वाऽवतु माऽपीह दत्तात्ते शर्म मेऽपि सः ।
स्वामी ते मेऽपि स हरिः पातु वामपि नौ विभुः ॥

सुखं वां नौ ददात्वीशः पतिर्वामपि नौ हरिः ।
सोऽव्याद्वो नः शिव वो नो दद्यात्सेव्योऽत्र वः स नः ॥

पदात्परयोः किम् ? त्वां पातु–मां पातु (१) । अपादादौ किम् ? वेदैरशेषैः सवेद्योऽस्मान् कृष्णः सर्वदाऽवतु'(२) नेह–'इति युष्मत्पुत्रो ब्रवीति। इत्यस्मत्पुत्रो ब्रवति' (३)। तेनेह न–ओदनं पच तव भविष्यति (४) इह तु स्यादेव–शालीनां ते ओदनं दास्यामि (५) इति ।

'पदस्य' 'पदात्' 'अनुदात्तं सर्वमपादादौ' 'युष्मदस्मदोःषष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोर्वानावौ' पद से परे, पादादि मे न रहनेवाले, षष्ठी चतुर्थी तथा द्वितीया से युक्त युष्मदस्मदों को 'वा–नौ' आदेश होंगे। 'बहुवचनस्य वस्नसौ' उपरोक्तविध युष्मद् और अस्मद् को बहुवचन मे 'वस्–नस्' होंगे। 'तेमयावेकवचनस्य' उक्तविध युष्मदस्मदों के ६–४–के एकवचन मे 'ते–मे' आदेश होंगे। 'त्वामौ द्वितीयायाः' द्वितीयैकवचनान्त युष्मद् और अस्मद् को त्वा और मा आदेश होगा। 'त्वा-मा' (२ के १ वचन मे) २–४–६ के २–३ वचनों मे 'वा–नौ, वः–नः' ४–६ के १ वचन मे 'ते–मे' होते हैं। 'पद से परे' कहने से (१) उदाहरण मे त्वा नहीं हुआ। (२)'अस्मान्' पादादि मे होने से 'न.' नही। 'युष्मद्'–मे 'स्थ' शब्द से श्रूयमाण विभक्तिवालो से ही 'वा–नौ' होंगे, (३) मे नही हुआ। 'समानवाक्ये निघातयुष्मदस्मदादेशा वक्तव्याः' 'एकतिङ् वाक्यम्' वा० से (४) मे दो तिङ् (२ वाक्य) होने से आदेश नहीं। (५) यह ठीक उदाहरण है, चतुर्थी के १ वचन मे 'ते' हुआ।

अन्वादेशे तु–धाता ते भक्तोऽस्ति । धाता तव भक्तोऽस्ति इति वा । 'तस्मै ते नमः' इत्येव—'एते वानावादय आदेशा अनन्वादेशे वा वक्तव्याः' वा० 'अन्वादेशे तु नित्यं स्युः'। ये ४ आदेश अन्वादेश के अभाव मे ऐच्छिक है। अन्वादेश मे नित्य है। पूर्व वाक्य और उत्तर वाक्य इन दोनों के उदाहरण है। उत्तरवाक्य के 'य इन्द्रो वज्रबाहुः' इत्यादि पूर्वार्ध है, अतः किंचित्कार्य विधान के लिये उपात्त का पुनरुपादानरूप अन्वादेश होने से 'तस्मै तुभ्य' नहीं होगा।

हरिस्त्वां मां च रक्षतु। कथं त्वां मां वा न रक्षेत्। हरो हरिश्च मे स्वामी—

'नचवाहाहैवयुक्ते' च-वा ह-अह-एव—इनके योग मे वानावादि आदेश नही होंगे। 'च' के तथा 'वा' के योग होने से 'त्वा 'मा' के स्थान मे 'त्वा' 'मा' नहीं हुआ। सूत्र मे 'युक्त' कहने से युष्मद् अस्मद् से साक्षात् योग रहने पर ही अन्वादेश का यह निषेध है, परपरा से योग होने पर आदेश हो जाता है। 'हरिश्च' यहाँ 'च' हरि हरों के समुच्चायक है, अस्मत् से साक्षात् सम्बद्ध न होने से 'मे' हुआ।

चेतसा त्वां समीक्षते, भक्तस्तव रूपं ध्यायति, आलोचने तु-भक्तस्त्वा पश्यति चक्षुषा—'पश्यार्थैश्चानालोचने' आँख से देखने के अतिरिक्त अर्थवाले धातुओं के योग मे ये अन्वादेश नही होंगे। यहाँ 'समीक्षते' ज्ञानसामान्यार्थक होने से 'त्वा' नहीं। यहाँ परम्परा से सम्बन्ध होने पर भी यह निषेध लगेगा, अतः 'ध्यायति' से 'तव' का साक्षात् सम्बध न होने पर भी 'ते' नहीं। तीसरे वाक्य मे देखना होने के कारण 'त्वा' आदेश हुआ।

'भक्तस्त्वमप्यहं तेन हरिस्त्वां त्रायते स माम्' 'त्वा–मा' वा (१) अग्ने तव, देवास्मान् पाहि, (२) अग्ने नय (३) अग्न इन्द्र वरुण (४) 'सर्वदा देव रक्ष नः' एवं 'इमं मे गङ्गे यमुने'—'सपूर्वायाः प्रथमाया विभाषा' जिसके पूर्व में कोई शब्द विद्यमान हो–ऐसे प्रथमान्त से पर मे स्थित युष्मद् अस्मद् को अन्वादेश विकल्प से होंगे। 'तेन' से युक्त 'हरिः' और 'त्रायते' से युक्त 'सः' प्रथमान्त होने से अन्वादेश का विकल्प है। 'सामन्त्रितम्' संबोधन में जो प्रथमा तदन्त 'आमन्त्रित' कहाता है। 'आमन्त्रित पूर्वमविद्यमानवत्'(१) आमन्त्रित अविद्यमानवत् (नही जैसा) है, अतः 'तव–अस्मान्' को 'ते नस्' नही। (२) 'नय' को उदात्तत्व तथा (३) मे सर्वानुदात्तत्व नहीं, 'अग्ने' दोनों जगह अविद्यमानवत् है और दोनों उदाहरणों मे 'तिङतिङः' तथा 'आमन्त्रितस्य च' मे विद्यमान पूर्वपद की अपेक्षा है। (४) में 'देव' अविद्यमानवत् है, तथाऽपि 'रक्ष' को लेकर 'नः' हुआ है। इसी प्रकार 'इम'–मंत्र मे यमुने मे पहले 'गगे' को अविद्यमानवद्भाव होने पर भी उसमें पहले स्थित 'मे' शब्द को लेकर 'आमन्त्रितस्य च' से सब अनुदात्त हैं।

हरे दयालो नः पाहि, अग्ने तेजस्विन् , यूयं प्रभवो देवाः शरण्याः, युष्मान् भजे, वो भजे इति वा—'नामन्त्रिते समानाधिकरणे सामान्यवचनम्' समानविभक्तिक विशेषण परे रहते विशेष्य (हरि) अविद्यमानवत् नहीं है। अतः 'नः' हुआ। इसी प्रकार 'अग्ने' अविद्यमानवत् न होने से पदसे परे मिलने के कारण 'तिङ् अतिङः' से अनुदात्त (तेजस्विन्) है। 'विभाषित विशेषवचने' बहुवचनान्त विशेष्य समानविभक्तिवाले 'आमन्त्रित' विशेषण परे रहते विकल्प से अविद्यमानवत् है। अतः उत्तरवाक्य मे अन्वादेश मे भी विकल्प से युष्मान् को 'वः' हुआ।

सुपात्–द्, सुपादौ, सुपादः, सुपादम् ,सुपादौ, सुपदः, सुपदा, सुपाद्भ्याम् इत्यादि–अच्छे पैरोंवाला। 'सङ्ख्यासुपूर्वस्य–' से सुपाद के अ का लोप हुआ। सु का हल्ङ्यादि लोप। चर्त्व विकल्प। औट् तक कोई विकार नहीं। शस् से 'पादः पत्' पात्–शब्दान्त जो भसञ्ज्ञक अङ्ग है उसके अवयव 'पात्' को 'पद्' आदेश होगा। रुत्वविसर्ग। एवं च अजादि वचनों मे आदेश होगा, हलादि मे यथावत्–विभक्तियोग।

अग्निमत् अग्निमद् अग्निमथौ अग्निमथः, अग्निमद्भ्याम्–इत्यादि—अग्नि को मथनेवाला। 'मन्थ विलोडने' अग्निं मथ्नातीति अग्निमथ्। सु मे जश्त्व–चर्त्व। औ–आदि मे यथाश्रुत। भ्याम् आदि मे जश्त्व। (फिर सुप् मे चर्त्व)।

प्राङ् प्राञ्चौ प्राञ्चः, प्राञ्चम् , प्राञ्चौ, प्राच , प्राचा प्राग्भ्याम्–इत्यादि—अच्छी तरह चलनेवाला। 'अञ्चु गतिपूजनयोः' 'क्विन्' प्रत्यय ऋत्विगादि से। उसका सर्वापहारी लोप, 'हलन्त्य' से 'न' का, 'लशक्व–' से 'क' का, 'वेरपृक्त–' से 'व' का। 'इ' उच्चारणार्थ है। 'अनिदिता हल उपधायाः क्ङिति' हलन्त तथा 'इ' इत् नही है ऐसे अगों के उपधाभूत 'न' का लोप होगा कित् और ङित् प्रत्यय परे रहते। 'अञ्चु' घटक न का लोप। 'उगिदचा' से (अन्चु मे उ इत्) नुम्। 'सयोगा–' से 'च्' का लोप। नुम् के न को 'क्विन्प्रत्य–' से कवर्ग–ङ्। सुलोप। औ मे नुम् के न को 'नश्चाप-' से अनुस्वार, अनुस्वार को 'अनुस्वा–'से परसवर्ण ञ्। औट् तक यही प्रक्रिया। शस् मे 'अचः' लुप्तनकार अञ्चति के भसंज्ञक अ का लोप होगा ('अनिदि–'

से नलोप) 'प्र–च् अस्' दशा मे–'चौ' लुप्ताकारनकारवाला अञ्चति के परे रहते पूर्व अण् को दीर्घ होगा। भ्याम् आदि मे 'चोः कुः' से कवर्ग–ग (जश्त्व)।

प्रत्यङ् प्रत्यञ्चौ प्रत्यञ्च, प्रत्यञ्चम् प्रत्यञ्चौ प्रतीच, प्रतीचा—प्रति से युक्त अञ्चु को क्विन्। 'अनि–' से न लोप। सुप्। 'उगिदचा–' से नुम्। सुलोप। च का सयोगान्तलोप। नुम् के न को कुत्व-ङ्। औट् तक प्राङ् मे उक्त प्रक्रिया। शस् मे असर्वनामस्थान होने से नुम् नही। प्रति–अच् शस् इस अवस्था मे यण् अन्तरङ्ग होने पर भी यण् निमित्तभूत 'अच्' वाला अ 'अचः' से विनाशोन्मुख है। अतः 'अकृतव्यूहाः' से यण् नही होगा। अ का लोप, 'चौ' से इ का दीर्घ। टा मे भी अ-लोप, दीर्घ।

अमुमुयङ् अमुमुयञ्चौ अमुमुयञ्चः। अमुमुयञ्चम् अमुमुयञ्चौ अमुमुईचः। अमुमुईचा अमुमुयग्भ्याम् इत्यादि—इसके प्रति चलनेवाला। अदस् अञ्च्। ऋत्विगादि से क्विन्। 'अनि–' से नलोप। अदस् अच् 'विष्वग्देवयोश्च टेरद्र्यञ्चतावप्रत्यये' विष्वग्–देव शब्दोंके तथा सर्वनाम के भी 'टि'को 'अद्रि' आदेश होगा, अविद्यमान प्रत्यय (क्विबादि)वाले अञ्चति परे रहते। अदस् अस् भाग (टि) को अद्रि, अदद्रि अच्, यण्–अदद्र्यच्। 'अदसोऽसे-र्दादुदो मः' स् अन्त मे नहीं हो ऐसे अदस् के द से परे को उ तथा ऊ होगे एव द को म भी होगा। अन्तरतम होने से ह्रस्व को ह्रस्व उ दीर्घ को ऊ। अदद्र्यच् स्, 'उगिद–'से नुम्। सुलोप। च का सयोगान्तलोप। नुम्के न् को कुत्व-ङ्। प्रथम द को म, तदुत्तर अ को उ, दूसरे द (द्र्यवाले) को म, तदुत्तर रेफ को उ करने पर अमुमुयङ्। औट् तक प्राङ् वत्, उत्व-मत्व यण् विशेष है। शस् मे अमुमु इ (अद्रिवाला) अच् अस्, 'अचः' से अलोप, 'चौ' से पूर्व इ को दीर्घ। टा मे भी यही क्रम। भ्यामादि मे यण् (अद्रिवाले इ को 'अच्' परे होने से) 'चो कुः' से कुत्व, जश्त्व। शसादि में मु–ई मे उ असिद्ध (मुत्वविधि त्रैपादिक है) होने से यण् नही।

अदमुयङ्, पक्षे अदद्र्यङ्, विष्वग्देवयोः किम्—अश्वाची, अञ्चतौ किम्—विष्वग्युक्, अप्रत्यये किम्—विष्वगञ्चनम्, तेन अयस्कारः—मतान्तर से 'अदसः' मे अवयवषष्ठी नही, अपितु स्थानषष्ठी, तथा च 'अलोऽन्त्यस्य' से अदस्

का अन्त्यवर्ण स दकार से पर मे नही (अ का व्यवधान है) है, 'अद्रि' होने पर तो इ द से परे नहीं (रेफ व्यवहित) है। अत 'अन्त्यबाधेऽन्त्यसदेशस्य' प० अन्त्य को आदेश बाधित हो तो अन्त्य के समीपवाले को होगा। तथा च अद्रि वाले द्-र को ही मुत्व होगा, अदस् के द्-अ (द) को नही। और एक मत मे तो 'अः सेः स्थाने यस्य' अर्थात् 'त्यदादीनाम्' से जहाँ अन्त्य स को अ होगा वहीं यह 'मुत्व' है। तथा च यहाँ मुत्व ही नही। 'विष्वग्देवयोः' न कहने पर 'अश्वम् अञ्चति' इस स्थल मे भी 'अद्रि' होता। 'अञ्चति परे रहते' न कहने पर 'विष्वक्' को युज् के योग मे भी 'अद्रि' प्राप्त होता। 'प्रत्यय अन्त मे न हो ऐसा अञ्चति' न कहने पर भावार्थकल्युट् परवाले अञ्चुको भी अद्रि हो जाता। 'अप्रत्यये' कहना यह ज्ञापित करता है कि अन्यत्र 'धातु' कहने से तदादि (धातु आदि मे है जिसका) का ग्रहण है। इसी से अतः 'कृकमि-' मे कृधातु तदादि (अण्-धात्वादि है) मानकर ही 'अयस्कारः' मे सत्व हुआ। नही तो केवल अयस्कृत्-इत्यादि मे ही सत्व होता।

उदङ् उदञ्चौ उदञ्चः। उदीचः। उदीचा उदग्भ्याम् इत्यादि। **सम्यङ्** सम्यञ्चौ सम्यञ्चः। समीचः। समीचा—उत्कृष्ट गति करनेवाला। क्विन्, नलोप, नुम्, सयोगान्त लोप। कुत्व पूर्ववत्। औट् तक पूर्ववत्। शसादि अच् मे 'उत ईत्' उत् से परमे रहनेवाले, न-कार लुप्त है ऐसे अंचति के भसज्ञक अ को 'ई' होगा। भ्यामादि में 'चोः कुः' से कुत्व जश्त्व।

'समः समि' अप्रत्ययान्त अञ्चति परे रहते सम्के स्थानमे 'समि' आदेश होगा। क्विन्नादि पूर्ववत्। शसादिमे 'अचः'से अलोप होनेपर 'चौ'से दीर्घ।

सध्र्यङ्। तिर्यङ् तिर्यञ्चौ तिर्यञ्चः। तिर्यञ्चम् तिर्यञ्चौ तिरश्चः। तिरश्चा तिर्यग्भ्याम् इत्यादि—साथ चलनेवाला। 'सहस्य सध्रिः'। अप्रत्ययान्त अञ्चति परे रहते 'सह' को 'सध्रि' आदेश होगा। क्विन् आदि। 'तिरसस्तिर्यलोपे' अकार लुप्त नही ऐसे अञ्चति अप्रत्ययान्त परे रहते 'तिरस्' को 'तिरि' आदेश होगा। क्विन्नादि। शस् मे 'अचः' से अ लोप होने पर ('तिरि'

नही) श्चुत्व (अञ्चु के अच् के च् के योग मे) रुत्व-विसर्ग। टा आदि अच् मे भी अलोप श्चुत्व । भ्यामादि मे अ का लोप न होने से 'तिरि' आदेश-यण्। 'चोः कु' कुत्व । जश्त्व ।

प्राङ् प्राञ्चौ प्राञ्चः । प्राञ्चम् प्राञ्चौ प्राञ्चः । प्राञ्चा प्राङ्भ्याम् इत्यादि । प्राङ्क्षु, प्राङ्क्षु, प्राङ्षु । एव पूजार्थे प्रत्यङ्ङादय.—पूजा करनेवाला । 'नाञ्चेः पूजायाम्' पूजार्थक अञ्चति की उपधाभूत न का लोप ('अनिदि'—से) नहीं होगा, न-कारलोप न होने से नुम् नही (नलोपी अञ्चति को ही नुम्) क्विन् । प्राञ्च्, सु, हल्ङ्यादि लोप । सयोगान्तलोप । अनुस्वारपरसवर्ण हटने से नकार को 'क्विन्प्रत्य-' से कुत्व-ङ् । औ आदि मे यथाश्रुत विभक्ति योग । शसादि मे नलोप न होने से 'अचः'से अ-लोप नहीं । रुत्वविसर्ग । भ्यामादि मे 'स्वादिष्व'—से पद होने से अञ्च् के च् का सयोगान्तलोप, अञ्च् मे के अनुस्वारपरसवर्ण के हटने से न को 'क्विन्प्रत्य' से कुत्व ङ् । सुप् मे 'ङ्णो कुक्' से कुक्, 'चयो द्वितीयाः'—से पक्ष मे ख् । वह दोनों वैकल्पिक होने से ३ रूप । 'आदेश'—से मूर्धन्यादेश । पूजार्थ मे प्रत्यङ् आदि भी इसी प्रकार चलेंगे ।

क्रुङ क्रुञ्चौ क्रुञ्चः । क्रुङभ्याम्—इत्यादि । पयोमुक्-पयोमुग् पयोमुचौ पयोमुचः—कुटिल व अल्प 'क्रुञ्च कौटिल्याल्पीभावयोः' । 'ऋत्विग्'—से नलोपाभाव क्विन् भी निपातित है । सु-का हल्ङ्यादि लोप, च् का सयोगान्तलोप । न को 'क्विन्प्रत्य'—से कुत्व (ङ्) । अजादिवचनों मे कोई विकार नही । भ्यामादि हलादि वचनों मे पद होने से च् का सयोगान्तलोप और न को कुत्व । पयोमुक् मेघ । 'मुच्लृ मोक्षणे' क्विप् । सुलोप । 'चोः कु.' से कुत्व, चर्त्व जश्त्व । अजादि वचनों मे कोई विकार नही । हलादि मे कुत्व, यथोचित जश्त्व ।

सुवृट्—सुवृड् सुवृश्चौ, सुवृश्चः । सुवृश्चा । सुवृट्त्सु—सुवृट्सु—अच्छी तरह करटनेवाला । 'ओव्रश्चू छेदने' । क्विप् । 'ग्रहिज्या'—से सप्रसारण (ऋ) । सुप । सुलोप । 'व्रश्चभ्र'—से च् को षत्व । स् (जो कि श्चुत्व से श् है) को 'स्कोः सया'—से लोप । ष-को चर्त्व-जश्त्व । अजादि मे यथावत् । हलादि मे जश्त्व । सुप् मे 'डः सि'—से वैकल्पिक धुडागम, चर्त्व ।

महान् महान्तौ महान्तः। हे महन्! । महतः। महता महद्भ्याम्-इत्यादि—
'वर्तमाने पृषद्बृहन्महज्जगच्छतृवच्च' उ० सू०। पृषद् बृहत् महत् जगत्-ये ४ शब्द निपातित है। इनका शतृप्रत्ययान्तवत् कार्य होगा। 'उगिद'-से नुम्। महन्त् स्-'सान्तमहतः'-से न् से पूर्व अ का दीर्घ। सुलोप, सयोगान्त-त्-लोप। औट् तक नुम्, अनुस्वार-परसवर्ण। उपधादीर्घ। 'सान्त'-मे 'असबुद्धौ' कहने से सबोधन मे दीर्घ नही। शसादि मे कोई विकार नहीं। भ्यामादि मे जश्त्व।

धीमान् धीमन्तौ धीमन्तः। हे धीमन्। अज्ग्रहणं नियमार्थम्। तेन स्रत्-ध्वत्-इत्यादौ न। गोमान् गोमन्तौ गोमन्तः। इत्यादि—बुद्धिमान्। मतुबन्त। तद्धितान्त होने से सुप्। धीमत् स्-'अत्वसन्तस्य चाधातोः' 'अतु' अंत मे है जिसका, उसकी उपधा को दीर्घ होगा-धातु से अतिरिक्त 'अस्' अन्त की उपधा को भी दीर्घ होगा सबुद्धिभिन्न सु परे रहते। पर तथा नित्य नुम् ('उगिदचा'-) को भी बाधकर पहले वचनसामर्थ्य से दीर्घ,तब नुम्। सु का हल्ङ्यादि लोप। त् का सयोगान्तलोप। औट् तक 'उगिद'-से नुम्, अनुस्वार-परसवर्ण। निषेध होने के कारण सबोधन मे दीर्घ नही। त् का सयोगान्त लोप। शसादि मे 'महत्' जैसा। 'उगिदचा' सूत्र मे 'अच्' का ग्रहण (कथन) 'धातु को 'उगित्' होने का कार्य होता हो तो 'अञ्चति' को ही होगा और धातु को नही' इस प्रकार नियम के लिये है। अतः 'स्रन्सु ध्वन्सु'-(गतौ) उगित् धातु है, उनसे क्विप् करने पर 'अनिदिता'-से न-लोप करने पर सुबुत्पत्ति, सु का हल्ङ्यादिलोप, 'वसुस्रसुध्वस्व'-से दत्व, चर्त्व से 'स्रत्-ध्वत्' बनते है। नियम न करने पर यहाँ भी उगित्कार्य-नुम् हो जाता।

'अत्वसन्त'-मे 'अधातोः' यह अत्वन्त का विशेषण न होने से अत्वन्त धातु होने पर भी दीर्घ होगा। 'गोमन्तम् इच्छति, वा गोमानिव आचरति' इस अर्थ मे 'क्यच्' अथवा 'आचारक्विप्' अन्त से कर्तरि क्विप्, य-अ-लोप करने पर सुबुत्पत्ति। दीर्घ, नुम्। सुलोप पूर्ववत्।

भवान् भवन्तौ भवन्तः। भवतीति भवन्—आप। 'भातेर्डवतुः'उ० सू० भा-धातु से 'डवतु' प्रत्यय होगा। डवतु डित् होने से भ-संज्ञक न होने पर भी

'भा' के 'आ' कालोप, भवत् सु, 'अत्वसन्त'–से दीर्घ, 'उगिदचा' से नुम्, सु का लोप, संयोगान्त लोप ('त्' का)। शत्रन्त 'भवत्' अत्वन्त न होने से दीर्घ नही। भूधातु के लट् को शतृ, शप्, गुण, अवादेश, पररूप, भवत्-सु, नुम्, सुका हल्ङ्यादि लोप, सयोगान्तलोप। औ आदि मे पूर्ववत्।

ददत् ददतौ ददतः। जक्षत्-द् जक्षतौ जक्षतः। दीध्यत्। वेव्यत्—देता हुआ। खाता हुआ। दाञ् तथा जक्ष धातु के शत्रन्त मे रूप है। यहाँ भी 'उगिद'-से नुम् प्राप्त होने पर 'उभे अभ्यस्तम्' (अष्टाध्यायी मे) षष्ठाध्याय के द्वित्व प्रकरण मे जो द्वित्व विहित है वे दोनों मिलित 'अभ्यस्त' कहाते है। 'नाभ्यस्ताच्छतुः' अभ्यस्त से पर मे रहनेवाले शतृ को नुम् नही होता है। सुको हल्ङ्यादि लोप। 'जक्षित्यादयः षट्' जक्ष-जागृ-दरिद्रा-चकास्-शास्-दीधीङ्-वेवीङ्–ये सात धातु भी अभ्यस्त संज्ञक हैं। अतः 'जक्ष' के शतृ के रूप मे 'उगिद०' से नुम् नही। सुलोपादि पूर्ववत्। दीधी-वेवी ये दोनों वेद मे ही प्रयुक्त होते है, ये यद्यपि ङित् होने से आत्मनेपदी हैं, अतः शानच् ही होना चाहिये, तथापि 'व्यत्ययो बहुलम्' से परस्मैपद होने से शतृ। नुम् निषेध। सुलोप।

गुप्-गुब् गुपौ गुपः। गुब्भ्याम्–इत्यादि—'गुपू रक्षणे' रक्षा करने वाला। क्विप् लोप। सुलोप। चर्त्व-जश्त्व। भ्यामादि मे पदत्वात् जश्त्व।

तादृक्, तादृग् तादृशौ तादृशः—अर्थ वैसा। 'त्यदादिषु दृशोऽनालोचने कञ्च' त्यदादि उपपद रहने पर ज्ञानसामान्य अर्थ से अतिरिक्त अर्थ वाले दृशि धातु से कञ् प्रत्यय होगा। 'च' से क्विन् भी होगा। 'आ सर्वनाम्न' सर्वनाम को आकार अन्तादेश होगा दृग् दृश वतु परे रहते। तद् दृश क्विन्, तद् के द् को आ, सवर्णदीर्घ, तादृश्-सुबुत्पत्ति। सु का हल्ङ्यादि लोप। 'क्विन्प्रत्य'–के असिद्ध होने से 'व्रश्चभ्र–' से षत्व, उसको जश्त्व से ड, ड को 'क्विन्प्र'–से कुत्व–ग, चर्त्वविकल्प। औ आदि अजादि म यथाश्रुत।

विट् विड् विशौ विशः। विशम्—प्रवेश करने वाला। विश प्रवेशने 'क्विप्' विश् स्, हल्ङ्यादिलोप। 'व्रश्च'–से श को ष, ष को जश्त्व से ड, चर्त्व-विकल्प। अन्यत्र यथाश्रुत। भ्यामादि मे पदत्वात् जश्त्व। सुप् मे वा धुट्।

नक्-नग् नट्-नड् नशौ नशः । नग्भ्याम्–नड्भ्याम् । इत्यादि–नही दीखनेवाला- 'णश् अदर्शने ।' नश् सुप् । सुका हल्ङ्यादि लोप । 'व्रश्च'–से नित्य षत्व प्राप्त होने पर 'नशेर्वा' नश् को कवर्ग अन्तादेश विकल्प से होगा पदान्त मे । जश्त्व-चर्त्व विकल्प । पक्ष मे षत्व, जश्त्व-चर्त्व । अजादि मे यथा-वत् । भ्यामादि मे कवर्गादेश, पक्ष मे 'व्रश्च'–से षत्व और जश्त्व ।

घृतस्पृक् घृतस्पृग् घृतस्पृशौ घृतस्पृशः । स्पृक्—घृत को स्पर्श करनेवाला । 'स्पृशोऽनुदके क्विन्' उदकशब्द से अतिरिक्त सुबन्त शब्द परे रहते स्पृश -धातु से क्विन् होगा । घृतस्पृश् शब्द से सुप् । सुका हल्ङ्यादि लोप । कुत्व असिद्ध होने से पहले 'व्रश्च' से षत्व, उसको जश्त्व से ड, उसको कुत्व से कु ग । चर्त्व विकल्प । भ्यामादि मे भी ग ।

'क्विन्प्रत्ययस्य' यहाँ 'क्विन्प्रत्यय जिससे हो' इस प्रकार बहुव्रीहिसमास करने से निरुपसर्ग स्पृश् से क्विप् । इससे भी अब बहुव्रीहि मानने के कारण (क्विन्नन्तत्व की योग्यता से) कुत्व । षत्व-कुत्व चर्त्व ।

दधृक् दधृग् दधृषौ दधृषः । दधृग्भ्याम्–इत्यादि । रत्नमुट् रत्नमुड् रत्नमुषौ रत्नमुषः—प्रगल्भ होता है । 'ऋत्विग्दधृक्' से क्विन् । द्वित्व ('दधृक्' के रूप मे) तथा अन्तोदात्तत्व निपातित है । दधृष् स् । हल्ङ्यादिलोप । जश्त्व से षको ड, कुत्व से ग । चर्त्व विकल्प । भ्यामादि मे जश्त्व । रत्नमुष् सु, सुलोप । जश्त्व चर्त्व । रत्न चुराने वाला । रत्नं मुष्णाति–इति रत्नमुट् ।

षट् षड् षड्भिः । षड्भ्यः २ । षण्णाम् । षट्सु षट्त्सु—छः-अर्थ । बहु-वचन मे ही । षष् -जस् तथा शस् का 'षड्भ्यो लुक्' से लोप । जश्त्व-चर्त्व । आम् मे 'षट्च'–से नुट् , 'न पदान्ता–' सूत्र से ष्टुत्व ('नाम्' के न को ण) ट् को 'यरो'–से प्राप्त वैकल्पिक अनुनासिक के अपवाद 'प्रत्यये'–वा० से नित्य अनुनासिक (ण्) । सुप् मे वैकल्पिक धुट् , चर्त्व ।

परमषट् । परमषण्णाम् । गौणत्वे तु—प्रियषषः । प्रियषषाम्—मुख्य छः । स्व प्रधानता मे 'षट्'–यह विधि अंगसबन्धी होने से तदन्तविधि । अन्य-पदार्थप्रधानता मे (प्रियाः षट् येषां ते) जस् को रुत्व विसर्ग । रत्नमुट् जैसा । आम् मे 'षट्चतुर्भ्यश्च' यहा बहुवचन निर्देश से स्वप्राधान्य मे ही नुट , गौणता मे नहीं ।

विपठी· विपठिषौ विपठिष· । विपठीर्भ्याम् । विपठीष्षु, विपठीःषु—पढना चाहने वाला। पठितुमिच्छति—('पठ-व्यक्तायां वाचि'-से इच्छार्थक सन्, द्वित्व, हलादि शेष, अभ्यास का इत्व, सन् को इट्, षत्व, सनाद्यन्तत्वात् धातुत्व। विपठिष-से क्विप्। अल्लोप) कृदन्त होने से 'कृत्त'-से प्रातिपदिक सज्ञा, सु का हल्ङ्यादि लोप। विपठिस्-के स को 'ससजु'-से रुत्व। (यहा षत्वविधि 'आदेश-' त्रिपादी मे 'ससजु०' से पर होने के कारण असिद्ध होने से धातु से विहित सन् के स को रु ही होगा) 'र्वोरुपधाया दीर्घ इकः' रेफ और वकारान्त उपधारूप इक् को दीर्घ होगा पदान्त मे। दीर्घ। विसर्ग ('खरव०' से)। अजादि वचनो मे पद न होने से रुत्व नही, षत्व। भ्यामादि मे रुत्व, 'र्वोरु' से उपधादीर्घ। सुप्, मे रुत्व, दीर्घ। विसर्ग, 'विसर्ज-' से सत्व, उसको बाधकर 'वा शरि' से वैकल्पिक विसर्ग। 'नुम्विसर्जनीयशर्व्यवायेऽपि' नुम्-विसर्ग-शर्—इनमे प्रत्येक से व्यवधान होने पर भी इण् और कवर्ग से पर मे स्थित स को मूर्धन्यादेश होगा। विपठीस्-सु, इस दशा मे द्वितीय स को उक्तसूत्र से षत्व, प्रथम स को ष्टुत्व से ष। विसर्गपक्ष मे सु को षत्व।

निंस्स्व-निंस्से—'नुम्विस०' मे प्रत्येक से व्यवधान ही विवक्षित है, नकि 'यथासभव'। अतः 'णिसि चुम्बने' के लोट् तथा लट् के मध्यमपुरुषैक वचन मे द्वितीय स को षत्व नही। यहा नुम् स्थानिक अनुस्वार और स से व्यवधान है, प्रत्येक से नहीं।

नुम्ग्रहण नुम्स्थानिकानुस्वारोपलक्षणार्थम्। तेनेह न—सुहिन्सु। पुंसु—'हिसि हिंसायाम्' धातु। सुहिन्स्-सु (स० बहुवचन), प्रथमसकार को सयोगान्त लोप, यहा न् पदान्तस्थ होने से उसको 'नश्चा०'से अनुस्वार नहीं। ऐसे ही पुंस्-सु, प्रथम सकार को संयोगान्त लोप। दोनों स्थलो मे क्रम से नुम् और अनुस्वार से व्यवधान होने से षत्व प्राप्त होता है, पर 'नुम्-स्थानापन्न अनुस्वार' से व्यवधान होने पर ही षत्व होगा—ऐसे ही प्रकृतसूत्र के भाष्य मे व्याख्या किया है। इसी से 'शर्' कथन से ही केवल अनुस्वार का सग्रह हो जाने से (अनुस्वार शर् मे पठित है) भी नुम् कहने की आवश्यकता हुई।

चिकीः चिकीर्षौ चिकीर्षः। चिकीर्षु—करना चाहनेवाला। चिकीर्ष् स्, स् का हल्ङ्यादि लोप। 'रात्सस्य'–से (षत्व असिद्ध होने से) स का लोप, रेफ का विसर्ग। भ्यामादि मे भी पद होने से स का लोप। सुप् मे 'रोः सुपि' से नियम न होनेके कारण 'खरव-'से रेफ का विसर्ग नही। षत्व।

दो दोषौ दोषः। दोष्णः। दोष्णा। दोषः। दोषा—हाथ। 'दमेर्डोस्' उ० सू० 'दमु' (उपशमे) को डोस् प्रत्यय, डित् होने से टि लोप। 'आदेश–' से मूर्धन्य (ष) आदेश। दोष्, सु, हल्ङ्यादि लोप। षत्व ('आदेश') असिद्ध होने से 'ओस्' के स को रुत्व (ससजु० से) तथा विसर्ग। औ आदि मे कोई विकार नही। शस् मे 'पद्न्नो'–से 'दोषन्' आदेश, अल्लोप, 'रषाभ्या–'से णत्व (रुत्व-विसर्ग)। टा मे भी दोषन्नादेश। न होने पर यथाश्रुत विभक्ति योग।

विविट्-विविड् विविक्षौ विविक्षः। तट्-तड् तक्षौ तक्षः—प्रवेश करना चाहनेवाला। 'विश प्रवेशने' सन्नन्त से क्विप्। विविक्ष् सु-हल्ङ्यादि लोप। ष् (क्ष् मे के) को संयोगान्त लोप। 'ष ढोः कः–' के असिद्ध होने से 'व्रश्च–' से श् (विश्–के) को ष, जश्त्व चर्त्व। औ आदि मे यथाश्रुत। 'तक्षू तनूकरणे' से क्विप्। सुलोप 'स्कोः सयो–' कलोप, ष को जश्त्व से ड, चर्त्व विकल्प।

गोरट् गोरड् गोरक्षौ गोरक्षः। तक् तग्। गोरक्-गोरग्—गो रक्षा करनेवाला। 'रक्ष पालने' क्विप्, सुलोप। 'स्कोः'–से क लोप। ष को जश्त्व–चर्त्व विकल्प। अजादि मे विकार नहीं। तक्ष् रक्ष् धातुओं से णिच् ('हेतुमति च' से)। क्विप्, 'णेरनिटि' से णि लोप और क्विप् लोप। तक्ष्, सुलोप। यहा सयोगान्त लोपापवाद भूत 'स्कोः सयोगा–'से कलोप, णिलोप के स्थानिवद्भाव के कारण, नही प्रवृत्त होता। 'पूर्वत्रासिद्धे न–' से स्थानिवद्भाव का निषेध, 'तस्य दोषः सयोगादिलोप–' अपवाद के कारण नहीं होता। तथा च सयोगान्त (क्ष् के ष् का) लोप। जश्त्व-चर्त्व। तक्षवत् ही गोरक्ष् की प्रक्रिया है।

पिपक् पिपग्। विवक्। दिधक्—'डुपचष् पाके' पकाना चाहनेवाला। सन्नन्त का रूप है। पिपक्ष् से सु, सुलोप। 'स्कोः'–से क लोप के प्रति कुत्व

(पच् के च को 'चोः कुः') असिद्ध होने से संयोगान्त-प का लोप। झल् पर मे न होने से 'ष' की सत्ता मे प्रवृत्त कुत्व की निवृत्ति, पर पदान्तत्वात्कुत्व। जश्त्व, चर्त्वविकल्प। 'वच परिभाषणे' बोलना चाहनेवाला। सन्नन्त का रूप-विवक्ष्-सु, सुलोप, संयोगान्तलोप। 'दह भस्मीकरणे' जलाना चाहनेवाला। सन्नन्त का रूप। दिधक्ष्-स्। सुलोप-सयोगान्त-प् लोप। पूर्ववत्।

सुपी सुपिसौ सुपिसः। सुपिसा सुपीर्भ्याम्। सुपीःषु सुपीष्षु—अच्छा चलने वाला। 'पिस गतौ।' सुपिस्- सु, सु का हल्ङ्यादि लोप, स् का रुत्व, 'र्वोरु' से दीर्घ, विसर्ग। अजादि मे यथाश्रुत। भ्यामादि में पद-त्वात् स् को रुत्व। सुप् मे 'र्वो' से दीर्घ, 'खरवसा'—से विसर्ग, 'नुम्-विसर्जनीय—' से षत्व। 'विसर्जनीयस्य—' से सत्व, ष्टुत्व, 'पक्षे वा शरि' से विसर्ग।

एव सुतूः। विद्वान् विद्वांसौ विद्वांसः। हे विद्वन्! विद्वांसम् विद्वांसौ विदुषः। विदुषा विद्वद्भ्याम् इत्यादि—अच्छी तरह खण्डन करनेवाला। 'तुस खण्डने' सुतुम् स्, सुलोप, रेफ, उपधा दीर्घ, विसर्ग सुपीवत्। 'विद ज्ञाने' 'विदेः शतुर्वसुः' विद् के लट् से विहित शतृ को 'वसु' आदेश होगा। विद्वस् सु, उगित्त्वात् नुम्। 'सान्तमहतः—'से दीर्घ, सुलोप। स् को संयोगान्त लोप। इसके असिद्ध होने से न-लोप नहीं है। सुट् मे नुम् 'सान्त' से दीर्घ, 'नश्चाप—' से अनुस्वार। शसादि अच् मे—'वसोः सम्प्रसारणम्' वस्वन्त भ का सम्प्रसारण होगा। विद्वस् के व को उ, 'सम्प्रसारणाच्च' से पूर्वरूप। प्रत्ययावयव होने से वसु के स् का षत्व। रुत्व-विसर्ग। भ्यामादि मे 'वसुस्रंसु०' से दत्व। सुप् मे दत्व-चर्त्व।

सेदिवान् सेदिवांसौ सेदिवांसः। सेदिवांस सेदिवांसौ सेदुषः। सेदुषा सेदिवद्भ्याम्। इत्यादि—'षद्लृ विशरणगत्यवसादनेषु'। ('भाषायां सदवसश्रुवः' से लिट् को क्वसुः) सेदिवस् सु, उगित्, नुम्, 'सान्तमहतः'—से दीर्घ, सुलोप। सका सयोगान्त लोप। सुट् मे नुम्, दीर्घ, न् को अनुस्वार। शस् मे 'वसोः सम्प्र—' से भाविसम्प्रसारण से 'आर्धधातुकस्येड्वलादेः' से वलादित्व न रहने के कारण 'अकृतव्यूह' परिभाषा (इट्-निमित्तीभूत

वलादित्व विनाशोन्मुख है—ऐसे को निमित्त मानकर कार्य (इडागम) न होगा) से इट् नहीं, व् को उ, पूर्वरूप (व के अ को), टा मे भी। रुत्व-विसर्ग। भ्यामादि मे 'वसुस्र –' से दत्व ।

सुहिन् सुहिंसौ सुहिंसः। सुहिन्भ्याम्। सुहिन्सु—अच्छी तरह हिंसा करने वाला। सुहिन्स् सु, सुलोप, स् का सयोगान्तलोप। 'सान्तमहतः'– मे सकारान्त सयोग प्रातिपदिक का ही लिया जाता है, न कि धातु का। महच्छब्द का साहचर्य ही कारण है। अतः यहाँ दीर्घ नहीं। अजादि- वचनो मे 'नश्चापदान्तस्य'से अनुस्वार। भ्यामादि मे पदत्वात् स् का संयो- गान्त लोप, अतः न् को अनुस्वार नहीं। सुप् मे 'नश्च' से वैकल्पिक धुट्।

ध्वत् ध्वद् ध्वसौ ध्वसः। ध्वद्भ्याम् एव स्रत्—स्खलित होनेवाला। 'ध्वसु संस्रवस्रसने' क्विप्। अनुस्वार असिद्ध ('नश्चा'-त्रैपा०) होने से 'अनि- दिता–' से नलोप। सु-लोप, 'वसुस्र सु'–से द। चर्त्व विकल्प। अजादि मे यथाश्रुत। भ्याम् मे स् को द, नलोप। स्रत् भी इसी प्रकार।

पुमान्। हे पुमन्। पुमांसौ पुमांसः। पुंसः। पुंसा पुंभ्याम् पुंभिः। पुंसु— पुरुष। 'पुसो डुसुन्' उणादिसू०। 'पूञ् पवने' पुस् शब्द से सुबुत्पत्ति। 'पुंसोऽसुङ्' सर्वनामस्थान विवक्षित होने पर पुस् को 'असुङ्' होगा। 'उ' केवल उच्चारणार्थ है। पुंस् असुङ् सु, ङित्त्वादन्तादेश। अब हलादि वर्ण न होने से अनुस्वार भी नहीं। पुमस् सु, उगित् होने से नुम्। 'सान्त०' से दीर्घ। सुलोप। स् का संयोगान्तलोप। 'असंबुद्धौ' कहने से सबोधन मे दीर्घ नही। असुङ्। पुमस् औ, 'नुम्' 'सान्त'–से दीर्घ। नुम् के न् को अनुस्वार। सुट् तक यही प्रक्रिया। शस् मे असर्वनामस्थान होने से असुङ् नही। पुंस्-अस्। रुत्वविसर्ग। अजादि में यथाश्रुत। भ्यामादि मे पद होने से स् का सयोगान्त लोप, नुम् के न् को अनुस्वार-परसवर्ण-म्। सुप् मे अनुस्वार। नुम्स्थानिकानुस्वार न होने से मूर्धन्यादेश (ष) नहीं।

उशना उशनसौ उशनसः। १–हे उशनन्, २–हे उशन, ३–हे उशनः। उशनो- भ्याम्-इत्यादि—शुक्राचार्य। उशनस् सु, 'ऋदुशन' से अनङ्, (अन्),

उशनन्-सु, नान्तोपधादीर्घ। सुलोप। नलोप। अजादि वचनों मे यथाश्रुत। सबोधन मे 'अस्य सम्बुद्धौ वाऽनङ् नलोपश्च वा वाच्यः' वा०। १ अनङ् करके नलोप न करने पर, २ अनङ् तथा नलोप, ३ अनङ् नहीं, स् का रुत्व-विसर्ग। भ्यामादि मे रुत्व, उत्व, 'हशि च' से गुण।

अनेहा अनेहसौ अनेहसः। हे अनेह, अनेहोभ्याम् इत्यादि—काल। अनेहस्-सु। अनङ्। सुलोप, उपधादीर्घ, नलोप। अजादि वचनों मे यथाश्रुत। सम्बोधन मे (हल्ङ्यादि लोप) स् का रुत्व-विसर्ग। भ्यामादि मे रुत्व उत्व, गुण।

वेधाः वेधसौ, वेधसः। हे वेधः। वेधोभ्याम् इत्यादि—ब्रह्मा। वेधस्-सु, असन्तत्वाद् ('अत्वसन्त०') दीर्घ, सुलोप। रुत्व-विसर्ग। सबोधन मे सुलोप और रुत्वविसर्ग। भ्याम् मे पूर्ववत्।

सुवः सुवसौ सुवसः। पिण्डं ग्रसते इति पिण्डग्रः-पिण्डग्लः—अच्छी तरह पहननेवाला। 'वस आच्छादने' क्विप् सुवस्-सु, सुलोप, स् को रुत्व विसर्ग। 'अत्वसन्त-' के विवरण मे 'धात्ववयव से अतिरिक्त जो अस्' कहने के कारण यहा दीर्घ नहीं। 'ग्रसु-ग्लसु अदने' से 'पिण्डग्रस्-पिण्डग्लस्' सकारान्त है और सुवस् के जैसे चलेंगे।

असौ असकौ असुकः। अमू अमी। अमुम् अमू अमून्। अमुना अमूभ्याम् ३ अमीभिः। अमुष्मै अमीभ्यः ३। अमुष्मात्। अमुष्य अमुयोः अमीषाम्। अमुष्मिन् अमुयोः अमीषु—अदस् शब्द से सु परे रहते त्यदाद्यत्व प्राप्त होने पर 'अदस औ सुलोपश्च' अदस् को औ अन्तादेश होगा सु परे रहते और सुलोप भी होगा। स् को औ, वृद्धि। सुलोप। 'तदोः सः-' से द को स। 'औत्वप्रतिषेधः साकच्कस्य वा वक्तव्यः सादुत्वं च' वा० 'अव्ययसर्व०' से विहित अकजन्त से औत्व का विकल्प कहना चाहिये तथा 'तदोः सः' से विहित 'स' से परे अकारको उकार भी विकल्प से कहना चाहिये। अदकस्-सु, स् को औ तथा सुलोप, द को स। औत्वाभाव पक्ष मे अदकस्-सु, द को स, स से परे अ को उ, त्यदाद्यत्व पररूप, रुत्व-विसर्ग। औत्व के पक्ष मे स से आगे उ 'संनियोगशिष्टाना सह वा प्रवृत्तिः

सह वा निवृत्तिः' न्याय (एक साथ मे जिनका विधान है, वे साथ ही मे प्रवृत्त या निवृत्त होते है ।) से औत्व निषेध और उत्व एक साथ विहित होने के कारण, नही होता । औ मे त्यदाद्यत्व पररूप से अदौ, 'अदसो–'से मत्व और ऊत्व । जस् मे त्यदाद्यत्व पररूप, जस् को शी, गुण–अदे । 'एत ईद् बहुवचने' अदस् के दकार से परे ए को ई होगा द को म भी होगा बहुवचन मे । यहा–त्यदाद्यत्व पररूप सपादसप्ताध्याय गत होने से उसकी दृष्टि मे 'अदसो—' त्रैपादिक शास्त्र असिद्ध हो जाता है, अत पहले त्यदाद्यत्व पररूप, अनन्तर उत्व मत्व । अदस् अम्, त्यदाद्यत्व-पररूप, अम् को पूर्वरूप । द को मुत्व । औट् औवत् । शस् मे त्यदाद्यत्व-पररूप, 'प्रथमयोः'–से पूर्व सवर्ण दीर्घ । स् को 'तस्माच्छ'– से न्, मूत्व । टा मे त्यदाद्यत्व-पररूप, द को मुत्व, 'घि' सज्ञा, ना-भाव 'न मुने'–'ना' के कर्तव्य पर तथा किये जाने पर भी 'मु' ('अदसो–' त्रैपादिक) असिद्ध नही । भ्याम् मे त्यदाद्यत्व पररूप, 'सुपिच' से दीर्घ, दा को मू । त्यदाद्यत्व पररूप 'नेदमदसोरको.' से भिस् को ऐस् न होगा। अदभिस् 'बहुवचने' से एत्व, 'एत ईद्–' से ईत्व द को मत्व । ङे मे त्यदाद्यत्व पररूप, ङे को स्मै, उत्वमत्व, षत्व । भ्यस् मे त्यदाद्यत्व पररूप, एत्व । ईत्व मत्व । त्यदाद्यत्व पररूप, ङसि को स्मात् उत्व मत्व पत्व । त्यदाद्यत्व पररूप, ङस् को स्य, उत्व मत्व षत्व । ओस् मे त्यदाद्यत्व पररूप, 'ओषि च' से एत्व अयादेश, उत्व मत्व, रुत्व-विसर्ग। आम् मे त्यदाद्यत्व पररूप, सुडागम, एत्व, ईत्व, मत्व, षत्व । ङि मे त्यदाद्यत्व पररूप, स्मिन्, उत्व-मत्व षत्व । सुप् मे त्यदाद्यत्व पररूप, एत्व, ईत्व-मत्व, षत्व । इति हलन्त पुंल्लिग प्रकरण ।

हलन्त स्त्रीलिङ्ग

उपानत्–द् उपानहौ उपानह । उपानद्भ्याम् । उपानत्सु—पादरक्षा । (जूता) । 'णह-बन्धने' कर्म मे क्विप् । उपानह् सु । 'न हो धः' नह् के ह को ध होगा झल् परे रहते और पदान्त मे । सुलोप । ध् को जश्त्व-चर्त्व । भ्यामादि मे ह् को ध, जश्त्व । सुप् मे धत्व चर्त्व ।

उष्णिक्-ग् उष्णिहौ । उष्णिग्भ्याम्—उष्णिक्षु । एक छन्द । 'ष्णिह प्रीतौ' उत्पूर्वक ष्णिह् से 'ऋत्विग्०' से क्विन् । निपातन से उद् के द् का लोप तथा ष्णिह् के ष को 'धात्वादेः ष सः' से जो सत्व भया है—उसको ष् । क्विन्नन्त होने से 'क्विन्प्रत्य०' से कुत्व (घ) जश्त्व-चर्त्व । भ्यामादि मे भी पदत्वात् घत्व, जश्त्व । सुप् मे कुत्व-चर्त्व, 'आदेश०' से षत्व ।

द्यौः दिवौ दिवः । द्युषु । (१) गीः गिरौ गिरः । एवं पू.—स्वर्ग-आकाश । दिव्-सु, 'दिव औत्' व को औ, यण् । रुत्वविसर्ग । सुप् मे 'दिव उत्' से उत्त्व, यण्, षत्व । (१) वाणी अर्थ । 'गिर् निगरणे' सु, सुलोप । 'र्वो—' दीर्घ, रेफ को विसर्ग । 'पॄ' धातु से क्विप्, 'उदोष्ठ्य०' से रपर उत्त्व, पुर् सु, 'र्वो' से दीर्घ । सुलोप । रेफ को विसर्ग ।

चतस्रः । चतसृणाम्—चार (स्त्रीलिंग) । बहुवचनान्त । 'त्रिचतुरोः०' से चतसृ आदेश । जस् । यण्-र । रुत्व-विसर्ग । चतसृ-आम्, 'ह्रस्व०' से नुट् । 'न तिसृ०' दीर्घ निषेध । 'ऋवर्णान्न०' से णत्व ।

का के काः । सर्वावत्—'किमः कः' से कादेश, 'अजाद्य०' से टाप्, सु का हल्ङ्यादि लोप । औ-आदि मे शीभाव आदि सर्वावत् ।

इयं इमे इमाः । इमाम् इमे इमाः । अनया आभ्याम् ३ आभिः । अस्यै । अस्याः २ । अनयोः । आसाम् । अस्याम् आसु—इदम् सु । 'य सौ' इदम् के द को य होगा सु परे रहते । त्यदाद्यत्व के बाधक 'इदमो मः' से म को म् । सु का लोप । औ मे त्यदाद्यत्व पररूप । टाप् । 'दश्च' से द को म । इमा औ, शी, गुण । जस् मे त्यदाद्यत्व-पररूप । टाप् । 'दश्च' से म, पूर्वसवर्णदीर्घ । रुत्वविसर्ग । विभक्ति परे रहते त्यदाद्यत्व पररूप, टाप् सर्वत्र मत्व । 'अमि पूर्वः' से पूर्वरूप । शस् मे अत्व पररूप टाप् मत्व, पूर्वसवर्णदीर्घ, रुत्वविसर्ग । इदम् टा, अत्व पररूप, टाप्रभृति सर्वत्र अजादि मे 'अनाप्यकः' से इद् को अन् । अन् आ-आ, 'आङि चाप' एत्व, अयादेश । भ्यामादि हल् मे सर्वत्र इद् का लोप । इदम् भ्याम्, इद्लोप, म को अत्व पररूप टाप् । भिस मे भी इसी प्रकार । इदम् ए, अत्व पररूप टाप्, स्याडागम, ह्रस्वता, इद् लोप, वृद्धि । इदम् ङसि और ङस् मे अत्व पररूप टाप्, स्याडागम, ह्रस्वता, इद् लोप रुत्व-विसर्ग ।

इदम् ओस्, इद् को अनादेश, अत्व पररूप टाप् 'आङि चापः' से एत्व, अयादेश रुत्वविसर्ग। इदम् आम्, अत्व-पररूप, टाप्, सुट्, इद् लोप। इदम् इ, अत्व पररूप टाप्, 'ङेराम्०' से आम्, स्याट् आगम, ह्रस्व, इद् लोप। सुप् मे इदम् सु, अत्व-पररूप-टाप्, इद् लोप।

अन्वादेशे तु—एनाम् एने एनाः। एनया। एनयोः—अन्वादेश मे 'द्वितीयाटौ' से एनादेश टाप्, रमावद्।

स्रक् स्रग् स्रजौ स्रजः। स्रग्भ्याम्। स्रक्षु—'सृज विसर्गे' 'ऋत्विग्०' से क्विन्, ऋ से पर मे 'अम्' आगम निपातित है। स्रज्-सु, सुलोप। कुत्व, जश्त्व-चर्त्व। भ्यामादि मे कुत्व-जश्त्व। सुप् मे कुत्व, चर्त्व। षत्व। कष योग मे क्ष।

स्या त्ये त्याः। एवं तद् यद् एतद्—त्यद् सु, अत्व पररूप, टाप् 'तदोः सः'—से स, सुलोप। औ मे अत्व पररूप टाप् शी, गुण। जस् मे अत्व पररूप टाप्-पूर्वसवर्णदीर्घ। रुत्व-विसर्ग। सा-या-एषा सुप् मे तद् यद् एतद् के रूप है। सर्वत्र त्यदाद्यत्व पररूप टाप् सुलोप, 'तदोः सः०' तद्-एतद् मे स, एतद् मे 'आदेश०' से मूर्धन्यादेश, सर्वावत् अन्य रूप।

वाक् वाग् वाचौ वाचः। वाग्भ्याम्। वाक्षु—वाणी। 'क्विब्वचि'—इत्यादि से क्विप् और दीर्घ, वाच् सु, सुलोप। 'चोः कुः' से कुत्व। जश्त्व चर्त्व। भ्यामादि मे कुत्व जश्त्व। सुप् में कुत्व, षत्व।

आपः। अपः। अद्भिः। अद्भ्यः २। अपाम्। अप्सु—जल। बहुवचनान्त। 'अप्तृन्०' से दीर्घ। आप् जस्। रुत्व-विसर्ग। शस् मे सर्वनामस्थान न होने से दीर्घ नहीं। रुत्व- विसर्ग। भिस् मे 'अपो भि' अप् को त होगा भकरादि प्रत्यय परे रहते। जश्त्व। रुत्व-विसर्ग।

दिक् दिग् दिशौ दिशः। दिग्भ्याम्। दिक्षु—दिशा। 'ऋत्विग्'—क्विन्, सुलोप। 'व्रश्च' से ष ('दिश्' शान्त होने से)। उसको जश्त्व-ड्। उसको 'क्विन्प्रत्य०' से कुत्व ग्, चर्त्व विकल्प। भ्यामादि मे भी कुत्व ग्। सुप् मे कुत्व चत्व, षत्व।

दृग् दृशौ दृशः। त्विट् त्विड् त्विषौ त्विषः। त्विड्भ्याम्। त्विट्त्सु-त्विट्सु—आँख। दृक् सु, सुलोप, जश्त्व चर्त्व। 'त्यदादिषु०' मे दृश् से क्विन् विहित

होने से उपपद न होने पर भी 'क्विन्प्र०' से कुत्व (बहुव्रीहिस्वारस्य से)। शकारान्त होने से यहाँ भी 'व्रश्च०' से षत्व जश्त्व—ड, कुत्व, चर्त्व ग-क। त्विट् षकारान्त, दीप्ति अर्थ। त्विष् क्विबन्त, सुलोप, जश्त्व चर्त्व। भ्यामादि में जश्त्व। सुप् में 'डः सि०' से वैकल्पिक धुट् चर्त्व।

सजूः सजुषौ सजुषः। सजूर्भ्याम्। सजूष्षु सजूःषु—साथमे प्रीति व सेवन करने वाला। 'जुषी प्रीतिसेवनयोः'। 'सहस्य स संज्ञाया' से सह को स, सुलोप। 'ससजुषो०' से रुत्व, 'र्वो' से उपधादीर्घ। 'खरव०' से विसर्ग। अन्यत्र यथाश्रुत। भ्यामादि में रुत्व तथा उपधादीर्घ। सुप् मे, रुत्व उपधादीर्घ, रेफ को विसर्ग, विसर्ग का 'विसर्ज०' से स, 'नुम्विस०' से शर् से व्यवधान होने के कारण सुप् के स को षत्व, पूर्व स को ष्टुत्व से ष। पक्ष में 'वा शरि' से विसर्ग को विसर्ग, इस पक्ष मे भी सुप् के स को ष।

आशीः आशिषौ आशिषः। आशीर्भ्याम्—शुभाशासन। 'आशासः क्वावुपसंख्यानम्' उपधा का इत्व। 'शासिवसि०' से स को ष। सुलोप। षत्व असिद्ध होने से रुत्व (आशिस् के स को) 'र्वोरुप०' से उपधादीर्घ। विसर्ग। भ्यामादि मे रुत्व, दीर्घ।

असौ अमू अमूः। अमूम् अमू अमूः। अमुया अमूभ्याम् अमूभिः। अमुष्यै अमूभ्याम् अमूभ्यः २। अमुष्याः २ अमुयोः २। अमूषाम्। अमूषु—अर्थ यह। सु मे पुंवत् 'अदस०' से औ, सुलोप। औ मे त्यदाद्यत्व पररूप, टाप्, औ को शी, गुण अदे, 'अदसोऽ०' से ऊत्व और द को मत्व। जस् मे अत्व पररूप टाप् पूर्वसवर्णदीर्घ ऊत्व मत्व। रुत्व विसर्ग। अम् मे अत्व, पररूप, टाप्, ऊत्व, मत्व, 'अमि पूर्वः' से पूर्वरूप। औट् शस् औ-जस्वत्। टा मे अ, पररूप, टा, 'आङि चापः' से ए, अयादेश, उत्व मत्व। भ्याम् मे अ, पररूप, टाप्, ऊ, म। भिस् मे भी। अदस् ए, अ पररूप, टाप्, 'सर्वनाम्नः०' स्याट् ह्रस्व, वृद्धि, उत्व मत्व, षत्व। भ्यस् मे भी भ्यावत्। ङसिङस् मे, अत्व, पररूप, टाप्, स्याट् ह्रस्व, उत्व,मत्व,षत्व, रुत्व विसर्ग। ओस् मे अत्व पररूप टाप्, 'आङिचाप' ए, अयादेश, मुत्व। आम् मे अत्व पररूप, टाप् सुट्, ऊत्व

मत्व। स को ष। ङि मे अ पररूप टाप्, ङि को आम्, स्याट् ह्रस्व, मुत्व षत्व। सुप् में अत्व पररूप टाप् मूत्व। षत्व॥इति हलन्त स्त्रीलिंग॥

हलन्तनपुंसकलिङ्गप्रकरण

स्वनडुत्-द् स्वनडुही स्वनड्वांहि। पुनस्तद्वत्। शेषं पुवत्—अच्छे बैल-वाला घर (बहुव्रीहि समास–'सु अनड्वाहो यस्य तत्' कुलं, गृहवा) स्वनडुह् सु। सु और अम् का 'स्वमोर्नपु०' से लुक् (लोप)। 'वसुस्रंसु' से दत्व, चर्त्वविकल्प। औ को शी। 'जश्शसो शिः' से शि, सर्वनाम स्थान होने से 'चतुरनडु०' से आम् (आ), 'नपुंसक०' से नुम्, 'नश्चाप' से अनुस्वार। टा आदि मे 'स्वनडुहा स्वनडुद्भ्याम्' इत्यादि पुलिंग के समान रूप।

'अहः' विमलद्यु विमलदिवी विमलदिवि—निर्मल आकाशवाला दिन। 'विमला द्यौः यस्य तत्'। विमलदिव् सु, सुलुक्। 'दिव उत्' से व को उत्व, यण्। औ में अन्तर्वर्ति ('विमलद्यु' मे विमल के आगे की) विभक्ति को लेकर पूर्वपद (विमल) की तरह उत्तरखण्ड (दिव्) को भी पदसंज्ञा प्राप्त होनेपर ('दिव उत्'से उत्ववारणार्थ) 'उत्तरपदत्वे चापदादि-विधौ प्रतिषेध' वा० समास में उत्तरखण्ड की पदसंज्ञा कर्तव्य होने पर अन्तर्वर्तिविभक्तिलोप में प्रत्ययलक्षण का प्रतिषेध कहना चाहिये पदादि मे विधि को छोड़कर अर्थात् उत्तरखण्ड को पद नहीं मानना चाहिये किंतु समुदाय को ही पद मानना चाहिये। प्रत्ययलक्षण न होने से (उत्व नहीं) 'नपुंस०' से औ को शी। जस् मे शि, झलन्त न होने से नुम् नहीं।

अपदादिविधौ किम्? दधिसेचौ—दही का सेक। वार्तिक में 'अपदा'–इत्यादि न कहने पर यहा 'सात्पदाद्योः' से षत्व-निषेध पद न होने से नहीं हो पाता, 'पदादिविधि को छोड़कर' कहने से प्रकृत पदादि में षत्व का निषेध हो जाता है। सेच् मे 'चोः कुः' से कुत्व, पदान्त मे विधि होने से, सेच् को पदसंज्ञा नहीं होने के कारण, नहीं होता।

वाः वारी वारि। चत्वारि—वार् जल। सु-अम् का लुक्। रेफ को विसर्ग। औ मे

शी, जस् को शि। चतुर् नित्य बहुवचनान्त। उससे जश्शस् को शि, शि सर्वनामस्थान होने से 'चतुरन०' चतुर् को 'आम्' मित्वात् अन्तावयव।

किम् के कानि——अर्थ 'क्या'। किम् से सु-अम् को लुक् होने पर 'प्रत्ययलोपे० से प्रत्ययलक्षण मानकर कादेश 'न लुमता०' से निषेध के कारण नहीं होता। सु-अम् को छोड अन्यत्र कादेश, औ को शी–गुण। जस् को शि नुम्। 'सर्वनाम०–से दीर्घ।

इदम् इमे इमानि। एनत् एने एनानि। एनेन। एनयो'—अर्थ यह। सु-अम् को लुक्। औ मे त्यदाद्यत्व पररूप 'दश्च' से द को म, 'नपु सकाच्च' से औ को शी, गुण। जश्शस् को शि, अत्व, पररूप, द को म, 'नपु ०' से नुम्, 'सर्वनाम' से दीर्घ। 'अन्वादेशे नपुंसके एनद्वक्तव्यः' वा० अन्वादेश मे एनत् आदेश होगा इदम् और एतद् को अम् परे रहते। 'स्वमो०' से अम् का लोप। औट्-शसों मे, एनत् के त् को त्यदाद्यत्व पररूप, आदि पूर्ववत्।

ब्रह्म ब्रह्मणी ब्रह्माणि। हे ब्रह्मन्–हे ब्रह्म——अर्थ वेद, तप, ब्रह्म। स्वम् को लुक्। 'नलोपः०' से नलोप। औ को शी, 'अट्कु०' से णत्व। जस् मे शि, सर्वनामस्थानता, उपधादीर्घ, णत्व। 'सम्बुद्धौ नपुंसकानां नलोपो वा वाच्यः' से वैकल्पिक नलोप। सुलोप।

अहर्भाति। अह्नी अहनी अहानि। अहोभ्याम् अहोभिः। दीर्घाहा निदाघ। हे दीर्घाहो निदाघ, दीर्घाहानौ दीर्घाहानः। दीर्घाह्णा दीर्घाहोभ्याम्——अहः दिन। अहन् के सु-अम् का लुक्। 'रोऽसुपि' से अहन् के न को रेफ सुप् परे नहीं। यहा रेफ के स्थान मे 'अहन्' से रु होने पर 'हशि च' से उत्व तथा गुण हो जाता। शीभाव। औ मे 'विभाषा ङिश्योः' से विकल्प से 'अ' का लोप। जस् को शि, सर्वनामस्थानता, उपधादीर्घ। भ्यामादि हलादि मे 'अहन्' सू० पदान्त मे अहन् के न को रु होगा, 'हशि च' से उत्व। गुण। भिस् मे भी। स् को रुत्व-विसर्ग।

यद्यपि 'अहः अहोभ्याम्' इत्यादि स्थल मे रत्व तथा रुत्व 'नलोपः०' की दृष्टि से असिद्ध होने से न-लोप प्राप्त होता है, तथापि 'अहन्' इसकी आवृत्ति (२ बार उच्चारण) करके एक से न-लोपाभाव का निपातन,

दूसरे से 'रु' की विधि मानने से उक्त रूप बन जाते है। अहन् शब्दान्त से भी रत्व तथा रुत्व ('रोऽसुपि' तथा 'अहन्' से), पदाधिकारस्थ होने से, होंगे। 'दीर्घाणि अहानि' यस्मिन् सः' दीर्घाहन् सु, नान्त उपधादीर्घ। हल्ङ्यादि से सुलोप, 'अहन्' से रुत्व, 'भोभगोअघोअ०' पूर्ववाला होने से यत्व, 'हलि सर्वेषा' से य-लोप। यहा सुलोप करने पर 'प्रत्ययलोपे०' से प्रत्ययलक्षण मानकर 'रोऽसुपि' मे 'सुप् परे रहते 'र' नही'-इस निषेध के कारण 'र' न होकर 'अहन्' से रु होना चाहिये था, पर 'अहन्' के असिद्ध होने से नान्त उपधादीर्घ होगा। सम्बोधन मे सुलोप करने पर 'अहन्' से रुत्व, 'हशि च' से उत्व। गुण। औ तक सर्वनामस्थान होने से नान्तोपधा दीर्घ। टा मे 'अल्लोपो०' से अल्लोप। भ्यामादि मे रुत्व, उत्व, गुण।

दण्डि दण्डिनी दण्डीनि। स्रग्वि स्रग्विणी स्रग्वीणि। वाग्मि वाग्मिनी वाग्मीनि- अर्थ-दण्ड माला तथा वाणी से युक्त। 'अत इनिठनौ' से इनिप्रत्यय। दण्डिन् सु,स्वम् का लुक्। नलोप। औ मे शी। जस् को शि, सर्वनामस्थानता,'इन्हन्पूषा०' से उपधा दीर्घ। 'अस्मायामेधास्रजो विनि.'से स्रग्विन्-मतुबर्थकविनिप्रत्ययान्त। स्रज् की अन्तर्वर्ति विभक्ति को मानकर पद होने से 'ज्' को कुत्व-'ग्'। यहाँ 'इन्' अनर्थक होने पर भी ('विन्'के एकदेश 'इन्') 'अनिनस्मिन्' मे 'इन्' से अतिरिक्त स्थल मे अनर्थक का ग्रहण न होगा- कथन के कारण जस् को शि करने पर दीर्घ के लिये ग्रहण होगा। 'अट्कु०' णत्व। वाग्मिन् 'वाचो ग्मिनिः' ग तद्धित होनेसे(लशक्व०) इत् नही वाच् के च को जश्त्व, कुत्व वाग्मिन् से सुप्। दण्डिवद् रूप।

बहुवृत्रह बहुवृत्रघ्नी बहुवृत्रहणी बहुवृत्रहाणि। बहुपूष बहुपूष्णी-बहुपूषणी बहुपूषाणि। बह्वर्यम बह्वर्यम्णी बह्वर्यमणी बह्वर्यमाणि—बहुत इन्द्र,सूर्य और अर्यमा (सूर्य) वाला युग वा मन्वन्तर। बहुव्रीहि समास। बहुवृत्रहन् सु, सुलुक्। नलोप। सर्वनामस्थान न होने से उपधादीर्घ नहीं। औ को शी, 'विभाषा ङिश्योः'से वैकल्पिक अल्लोप।'होहन्ते०'से हको कुत्व-घ। अल्लोपाभाव पक्ष मे एकाजुत्तर०'से णत्व। जस् मे शि,'इन्हन्-' उपधादीर्घ, णत्व। बहुपूषन् सु, सुलुक्, न लोप। औ को शी,'विभाषा'से विकल्प से अल्लोप,'रषाभ्या-' से णत्व, अल्लोपाभाव मे भी णत्व। जस् को शि, सर्वनामस्थानता,

उपधादीर्घ । णत्व । बह्वर्यमन् सु । सुलुक् । नलोप । औ मे शी, 'अट्-' से णत्व । बहुपूषवत् ।

असृक्-ग् असृजी असृञ्जि । असानि । असृजा अस्ना, असृग्भ्याम्, असभ्याम्, इत्यादि—रक्त । सुलुक् । पदान्त मे कुत्व । 'ऋत्विग्-' से क्विन् विहित है, 'क्विन्प्रत्ययस्य-' से कुत्व पदान्त मे । जश्त्व । चर्त्वविकल्प । औ मे शी । पदान्त न होने से कुत्वादि नहीं । जस् मे शि, नुम् 'नश्चाप-' से अनुस्वार, 'अनुस्वार-' से परसवर्ण ञ । शसादि मे 'पद्दन्नोमास्०' से विकल्प से असन्, शस् को शि, नान्तोपधादीर्घ । टा मे असन् पक्ष मे अल्लोप । असन्नभाव पक्ष मे भ्यामादि मे कुत्व जश्त्व, असन्-पक्ष मे नलोप ।

ऊर्क् ऊर्ग् ऊर्जी ऊर्न्जि । बहूर्जि बहूर्ञ्जि—बलवान् । 'ऊर्ज बलप्राणनयोः' सुलुक्, 'चोः कुः' से कुत्व । चर्त्व विकल्प । औ मे शी । जस् को शि, झलन्त होने से नुम्-मित् अन्त्याच् (ऊ) से पर मे होने से 'नरज' का संयोग है । बहूर्क् (बहुव्रीहि समास) उर्क्वत् ही है प्राय । जश्शस् को शि, झलन्तत्वात् नुम् आने पर 'बहूर्जि प्रतिषेधो वक्तव्यः, अन्त्यात् पूर्व नुममेक इच्छन्ति' वा० । अर्थात् बहूर्ज् मे ऊ से परे नुम् का निषेध है, अन्त्यवर्ण (ज्) से पूर्व मे नुम् विकल्प से होगा । यहा नुम् पक्ष मे श्चुत्व असिद्ध होने से 'नश्चा' से अनुस्वार तथा उसको परसवर्ण ञ् ।

त्यत् त्यद् त्ये त्यानि । तत्-तद् ते तानि । यद् ये यानि । एतत्-एतद् एते एतानि । अन्वादेशे तु-एनत्—त्यद् तद् एतद् के सु अम् को लुक्, औ मे त्यदाद्यत्व, पररूप । अदन्तवत् रूप है । सर्वनाम कार्य-शी-स्मै स्मात् सुट् स्मिन् विशेष है । एतत् के अन्वादेश मे 'एनत्' रूप होगा । द्विवचन आदि मे त्यदाद्यत्व-पररूप आदि कार्य ।

बेभित्, बेभिद् बेभिदी बेभिदि-ब्राह्मणकुलानि । चेच्छिदि—अत्यंतविदीर्ण होनेवाला । सुलुक् । जश्त्व-चर्त्व । औ मे शी । जश्शस् को शि । 'अतो लोप' से अल्लोप को स्थानिवद्भाव होने से झलन्त नहीं रहा । अतः नुम् नहीं । 'बेभिद्य' मे 'द्य' के आगे स्थित अ के लोप को स्थानिवद्भाव से अ मान कर अजन्तत्व प्रयुक्त नुम भी नहीं कर सकते, 'अनल्विधौ' से स्थानिवद्भाव का निषेध हो जाता है ।

गवाक् गवाग् गोअक् गोअग् गोऽक् गोऽग् गवाङ् गोअङ् गोङ्—'अञ्चु गति-पूजनयो.' इन् दो अर्थो मे गत्यर्थ मे 'अनिदिता०' से न् (जो कि अनुस्वार पर सवर्ण से ञ् बना है) का लोप होता है, पूजार्थ मे तो 'नाञ्चेः पूजाया' से न का लोप नही। 'अच्' आगे रहते 'अवङ् स्फोटायनस्य' से अवङ्, सवर्णदीर्घ 'सर्वत्र विभाषा गो' से प्रकृतिभाव, 'एङ. पदान्तादिति' से पूर्वरूप। सभी रूपों मे सु-अम् का लुक्। कुत्व। गत्यर्थ में चर्त्व-विकल्प से २-२ रूपों से ६। पूजार्थ में अञ्च् के च् को सयोगान्त लोप। न् को कुत्व से ङ् अवङादि से ३ अम् मे भी ये ही ६ रूप बनेगे।

गोची। गवाञ्ची गोअञ्ची गोऽञ्ची। गवाञ्चि गोअञ्चि गोऽञ्चि—औ को शी। गत्यर्थक मे-'अनि' से नलोप, 'अच' से अल्लोप से एक ही रूप। पूजार्थ मे—शी, अवङ्, सवर्णदीर्घ। प्रकृतिभाव। पूर्वरूप से ३ रूप। जश्शस् मे शि, शि को सर्वनामस्थानता, गत्यर्थ मे भी 'उगिदचा' मे नुम्, न् को अनुस्वार परसवर्ण ञ्, पूजार्थ मे नलोप नही, अत. ३ रूप समान ही हैं।

गोचा, गवाञ्चा गोअञ्चा गोऽञ्चा, गवाग्भ्याम् गोअग्भ्याम् गोऽग्भ्याम् गवाङ्भ्याम् गोअङ्भ्याम् गोऽङ्भ्याम्। गवाङ्क्षु गोअङ्क्षु गोऽङ्क्षु, गवाङ्षु गोअङ्षु गोऽङ्षु गवाक्षु गोअक्षु गोऽक्षु—टा मे गत्यर्थमे लुप्तनकार होनेसे 'अच' से अल्लोप से एकही रूप। पूजार्थ मे नलोप न होने से अ लोप भी नहीं। अवङ्-प्रकृतिभाव-पूर्वरूप से ३ रूप। भ्यामादि हलादि मे गत्यर्थमे-नलोप चको-जश्त्व, कुत्व, अवङ् प्रकृतिभाव पूर्वरूपसे ३ रूप। पूजार्थ मे च् को सयोगान्त लोप, न् को कुत्व ङ्। अवङ् प्रकृतिभाव पूर्वरूप से ३ रूप। सुप् मे पूजार्थ मे 'नाञ्चेः०' से नलोप निषेध, च् को सयोगान्त लोप, न् को कुत्व-ङ। अवङ्, प्रकृतिभाव, पूर्वरूप, 'ङ्णोः कुक्'-से कुक्। 'अपदान्त-'से सुप् के सु को षत्व। कुगागमाभाव मे भी अवङ् प्रकृतिभाव पूर्वरूप तथा षत्व से ३ः रूप। गत्यर्थ मे नलोप करने पर, (अञ्च्) के च् को कुत्व ग्। चर्त्व, मूर्धन्य ष। अवङ् प्रकृतिभाव पूर्वरूप। 'चयो द्वितीया'-वा० से पाक्षिक 'ख' से और ६ रूप (गत्यर्थ-पूजार्थो मे मिलाकर) नही हो सकते, क्योंकि 'चयो-' की दृष्टि मे 'खरि च' असिद्ध होने से क ही नहीं है कि उसको ख होता।

तिर्यक् तिरश्चो तिर्यञ्चि , तिर्यङ् तिर्यञ्चौ तिर्यञ्चि—जानवर । 'तिरः अञ्चतीति' इस विग्रह मे ऋत्विगादि से क्विन् । गत्यर्थ मे नलोप 'अनिदिता–'से । तिरस् अच्–सु अम् का लोप । तिरस् को 'तिरि' आदेश, यण् 'क्विन्प्रत्य–' असिद्ध होने से 'चोः कुः' से कुत्व । जश्त्व–चर्त्व । तिरस् अच् औ, शी, भत्वात् अ-लोप । 'तिरसस्तिर्यलोपे' मे 'अलोपे' कहने के कारण तिरि–आदेश नही । श्चुत्व । जस् मे शि, सर्वनामस्थान होने से नुम् । अनुस्वार-परसवर्ण, तिरि, यण् । पूजार्थ मे भी स्वम् को लुक् । नलोप नहीं । अ-लोप न होने से तिरि आदेश, च को सयोगान्त लोप, नको कुत्व ङ् । औ को शी, तिरि, यण् । जस् को शि । यण् ।

यकृत् यकृती यकृन्ति, यकानि, यक्ना यकृता—यकृत् (लिवर)। स्वम् को लोप । जश्त्व-चर्त्व । औ को शी। जस् को शि। झलन्तत्वात् नुम्, अनुस्वार-परसवर्ण। शस् को शि, 'पद्दन्नो–'से विकल्प से यकन्नादेश। शि सर्वनामस्थान हाने से नान्तोपधा को दीर्घ। टा मे यकन् पक्ष मे अल्लोप।

शकृत् शकृती शकृन्ति। शकानि। शक्ना। शकृता—मल। यकृद्वत् रूप। शस् मे विकल्प से शकन्नादेश। टा मे अल्लोप शकन्-पक्ष मे।

ददत् ददती ददन्ति, ददति—देता हुआ। रूप प्रक्रिया पूर्ववत्। जस् मे शि 'नाभ्यस्ताच्छतुः' से नित्य नुम् का निषेध प्राप्त होने पर–'वा नपु सकस्य' अस्यस्त से पर मे स्थित जो शतृ तदन्त नपु सक को नुम् विकल्प से होगा।अनुस्वार परसवर्ण। पक्ष मे केवल शि।

तुदत् तुदन्ती तुदती तुदन्ति—व्यथित करता हुआ। स्वम्लुक् औ मे 'आच्छीन-द्योनु म्' अवर्णान्त अंग से पर मे जो शतृ का अवयव है, तदन्त अंग को विकल्प से, शी और नदी परे रहते, नुम् होगा। अनुस्वार-परसवर्ण। जस् में यकृद्वत्।

भात् भान्ती भाती भान्ति। पचत् पचन्ती पचन्ति। दीव्यत् दीव्यन्ती दीव्यन्ति—'भा-दीप्तौ' 'डुपचष् पाके' 'दिव् क्रीडादि' इन तीनों के शत्रन्त रूप। भात्-सु-अम् का लोप। औ को शी, 'आच्छी'– से विकल्प से नुम्। जस् को शि, 'उगिदचा–' से नुम्। अनुस्वार परसवर्ण। पचत् से स्वम् का लोप। औ को शी, 'शप्श्यनोर्नित्यम्' शप् और श्यन् के अकार से पर

मे स्थित जो शतृ का अवयव तदन्त को नित्य ही ('आच्छी-'के अपवाद) नुम् होगा। यहाँ शप् है। जस् को शि, सर्वनामस्थान होने से नुम्-अनुस्वार परसवर्ण। दीव्यत्-सुलुक्। औ को शी, 'शप्श्यनो' से (श्यन् से आगे शतृ होने से) नित्य ही नुम्। अनुस्वार परसवर्ण। जस् मे पूर्ववत्।

स्वप् स्वब्। स्वपी स्वाम्पि स्वम्पि। स्वपा स्वद्भ्याम् स्वद्भिः—अच्छे जल-वाला सरोवर। 'सु आपः यस्मिन् तत्' स्वप् से स्वम् लुक्। चर्त्व जश्त्व। औ को शी। जस् को शि करने पर शि के सर्वनामस्थान होने से 'अप्तृन्'-से दीर्घ। झलन्त होने से नुम्, अनुस्वार परसवर्ण। यहाँ यद्यपि नुम् नित्य तथा पर भी है, अतः दीर्घ से पहले होना चाहिये। तथापि प्रतिपदोक्त ('अप्तृन्'-मे अप् शब्द को उच्चारण करके विहित) होने से पहले दीर्घ। 'निरवकाशत्व प्रतिपदोक्तत्व'। अर्थात् अन्यत्र लक्ष्य मे जिसे अवसर प्राप्त नहीं उसे ही प्रतिपदोक्त कहते है—इस पक्ष मे नुम् ही होगा, (नुम् करने पर फिर अ उपधा न होने से) दीर्घ नही। दीर्घ-विधि 'आपः' मे सावकाश है। भ्या-भिस् मे 'अपा भि' से त, जश्त्व।

धनुः धनुषी धनूंषि। धनुषा धनुर्भ्याम्—एव चक्षुर्हविरादयः। धनुप। 'धन धान्ये' से 'अर्तिपृ' से उस्। प्रत्ययावयव होने से 'आदेश०' म को षत्व। धनुष्-स्वम् का लोप। षत्व असिद्ध ('ससजु'-की दृष्टि मे 'आदेश'-यह) होने से 'ससजु'-से रुत्व। विसर्ग। औ को शी। जस् को शि, 'नपुंसक'-से नुम्। 'सान्तमह'-से दीर्घ, 'नुम्विसर्ज'-से षत्व। 'नश्चा' मे अनुस्वार, परसवर्ण। भ्यामादि मे षत्व असिद्ध होने से 'ससजु-' से रुत्व। इसी प्रकार चक्षुः, हवि आदि षकारान्तो के रूप।

पिपठीः पिपठिषी पिपठिषि। पिपठीर्भ्याम् इत्यादि—पढना चाहने वाला कुल। पिपठिष्-स्वम् को लुक्, षत्व असिद्ध होने से रुत्व। 'वोरुप०' से दीर्घ। विसर्ग। औ को शी। जस् को शि, 'नपुंस'-से नुम् नहीं होगा, कारण 'पिपठिप' के अकार का, 'अतो लोपः' से जो लोप हुआ है उस अल्लोप का स्थानिवद्भाव के कारण अब झलन्त नही रहा। अल्लोप को स्था-निवद्भाव मान कर अजन्त-लक्षण नुम् भी नहीं कर सकते, 'स्थानिवद्भा-' सूत्र में 'अनल्विधौ' कहने के कारण अल्लोप को (प्रकृत मे नुम् मित् होने

से अन्त्य अच् से पर और उसी का अन्तावयव ष के आगे अ के स्थान मे होगा-अतः अल्विधि ही रही) स्थानिवद्भाव नहीं है। भ्यामादि हलादि मे स को रुत्व। 'र्वोरुपधाया-' से दीर्घ।

पयः पयसी पयांसि। **पयसा पयोभ्याम्।** इत्यादि—दूध व जल। स्वम् का लुक्। पयस् के स को रुत्व विसर्ग। औ को शी। जस् को शि, नुम्, 'सान्तमहतः'-से दीर्घ, अनुस्वार। भ्याम् आदि हलादि में स को रुत्व, 'हशि च' से उत्व, गुण।

सुपुम् सुपुंसी सुपुमांसि—अच्छे पुरुषवाला कुल। स्वम् का लोप। सुपुस् के स् को सयोगान्त लोप। औ को शी। जस् को शि, शि सर्वनामस्थान होने मे 'पुंसोऽसुङ्' सुपुमस् इ, नुम्, 'सान्तमहतः' से दीर्घ। 'नश्चापदा-' से अनुस्वार।

अदः अमू अमूनि—यह। अदस् स्वम् का लुक्। रुत्वविसर्ग। औ को शी मे त्यदाद्यत्व पररूप, गुण, 'अदसोऽ०' से ऊत्व-मत्व। जस् को शि, त्यदाद्यत्व पररूप। अजन्त होने से नुम्, उपधादीर्घ, ऊत्वमत्व ॥ हलन्त नपुसकलिंग समाप्त ॥

अव्यय प्रकरण

१ स्वर्। २ अन्तर्। ३ प्रातर्। ४ पुनर् ५ सनुतर्। ६ उच्चैस्। ७ नीचैस्। ८ शनैस् ९ ऋधक्। १० ऋते। ११ युगपत्। १२ आरात्। १३ पृथक्। १४ ह्यस्। १५ श्वस्। १६ दिवा। १७ रात्रौ। १८ सायम्। १९ चिरम्। २० मनाक्। २१ ईषत्। २२ जोषम्। २३ तूष्णीम्। २४ बहिस्। २५ अवस् २६ समया। २७ निकषा। २८ स्वयम्। २९ वृथा। ३० नक्तम्। ३१ नञ्। ३२ हेतौ। ३३ इद्धा। ३४ अद्धा। ३५ सामि। ३६ वत्। ३७ ब्राह्मणवत्। ३८ क्षत्रियवत्। ३९ सना। ४० सनत्। ४१ सनात्। ४२ उपधा। ४३ तिरस्। ४४ अन्तरा। ४५ अन्तरेण। ४६ ज्योक्। ४७ कम्। ४८ शम्। ४९ सहसा। ५० विना। नाना। ५२ स्वस्ति। ५३ स्वधा। ५४ अलम्। ५५ वषट्। श्रौषट्। वौषट्। ५६ अन्यत्। ५७ अस्ति। ५८ उपांशु। ५९ क्षमा। ६० विहायसा। ६१ दोषा। ६२ मृषा। मिथ्या। ६३ मुधा। ६४ पुरा। ६५ मिथो। मिथस्। ६६ प्रायस्। ६७ मुहुस्। ६८ प्रवाहुकम्। प्रवाहिका। ६९ आर्यहलम्। ७० अभीक्ष्णम्। ७१ साकम्। सार्धम्। ७२ नमस्।

७३ हिरुक् । ७४ धिक् । ७५ अम् । ७६ आम् । ७७ प्रताम् । ७८ प्रशाम् । ७९ प्रतान् । ८० मा । माङ् । ८१ च । ८२ वा । ८३ ह । ८४ अह । ८५ एव । ८६ एवम् । ८७ नूनम् । ८८ शश्वत् । ८९ युगपत् ९० भूयस् । ९१ कूपत् । सूपत् । कूवित् । ९२ नेत् । ९३ चेत् । चण् । ९४ कच्चित् । ९५ किञ्चित् । ९६ यत्र । ९७ नह । ९८ हन्त । ९९ माकिः । माकीम् । नकिः । नकिम् । आकिम् । नञ् । (ख)९९ यावत् । तावत् । १००त्वै । द्वै । न्वै । १०१ रै । १०२ श्रौषट् । वौषट् । स्वाहा । १०३ स्वधा । वषट् । १०४ तुम् । १०५ तथाहि । १०६ खलु । १०७किल । १०८ अथो । अथ । १०९ सुष्ठु । ११० स्म । १११ आदह । ११२ अवदत्तम् । ११३ अहयुः । ११४अस्तिक्षीरा । ११५ अ । आ । इ । ई । उ । ऊ । ए । ऐ । ओ । औ । ११६ पशु । ११७ शुकम् । ११८ यथाकथाच । ११९ पाट् । प्याट् । अङ्ग । है । हे । भोः । अये । १२०द्य । १२१विषु । १२२ एकपदे । १२३युत् । १२४आतः ।

'स्वरादिनिपातमव्ययम्' स्वर् आदि हैं जिनको ऐसा समुदाय और निपात भी अव्यय कहलाते हे । अव्यय अनेकार्थक होते हैं । अतः शिष्टप्रयोग ही प्रमाण है ।

१ स्वर्ग । २ अतर् मध्य । ३ प्रात काल । ४ फिर से । ५ अन्तर्धान । ६ ऊँचा या महान् । ७ अल्प । नीचे । ८ धीरे से । ९ सत्य । १० छोडने मे । ११ एक साथ । १२ दूर और पास । १३ भिन्न । १४ गतदिन । १५ आनेवाला दिन । १६ दिन । १७ रात । १८ सायकाल । १९ देर । २० थोडा । २१ थोड़ा । २२ मौन । २३ मौन । २४-२५-बाहर । २६ समीप । २७ समीप । २८ अपने से । २९ व्यर्थ । ३० रात । ३१ निषेधादि । ३२ निमित्तादि । ३३ प्रकाश । ३४ स्पष्ट तथा निश्चय । ३५ अर्ध । ३६ सादृश्य ३ । ३९नित्य तीनोका । ४२भेद । ४३अन्तर्धान । ४४ बिना । ४५ वर्जन । ४६ अधिककाल । ४७ सुख जल तथा सिर । ४८ सुख । ४९ आकस्मिक । ५० दोनों वर्जनाद्यर्थक है । ५२ मगल । ५३पितरों को देने मे । ५४ बस । ५५ तीनों देवताओं को देने मे । ५६ अन्य । ५७ है । ५८ एकान्त मे कथन । ५९ सहन । ६० आकाश । ६१ रात । ६२ दोनों असत्य । ६३ व्यर्थ । ६४ प्राचीन काल, निरन्तर, आसन्न भविष्य वाला ।

६५ दोनों एकान्त मे । ६६ बहुलतासे। ६७ पुनः । ६८ समकाल मे। ६९ बलात्। ७० पुनः पुनः। ७१ दोनों साथ के अर्थ में। ७२नमस्कार। ७३ वर्जन। ७४ धिक्कार। ७५ शीघ्रता। ७६ अर्गीकार। ७७ ग्लानि। ७८समानार्थ मे। ७९विस्तार। ८०निषेध मे २। इति स्वरादिनिपात। ८१ समुच्चयादि। ८२ विकल्पादि। ८३ प्रसिद्धि। ८४ आश्चर्य। ८५ अवधारण। ८६ ऐसा। ८७ निश्चय। ८८ निरंतर। ८९ एक साथ। ९० फिर। ९१-३नो प्रश्नादि। ९२ शंका मे। ९३-२नो यदि। ९४ इष्ट प्रश्न। ९५ थोड़ा। ९६-जहा। ९७शुरू मे। ९८हर्षादि। ९९-१ वर्जन।(ख)९९-२ साकल्यादि। १००वितर्कादि। १०१ दान मे। १०२ स्वाहा तक ३ देवताओ को हवि देने मे। १०३ पितरों को देने मे। १०४ तू। १०५ निदर्शन मे। १०६ निश्चय। १०७ऐतिह्य। १०८ प्रश्न-मगल बाद आदि। १०९ अच्छी तरह। ११० अतीत आदि। १११ उपक्रम हिंसा निन्दा। ११२ दान। ११३ मै। ११४दूधवाली गौ। ११५-१० अ आदि सम्बोधन,वाक्य,आदि। ११६ठीक। ११७ शीघ्रता। ११८ अनादर मे। ११९-७ सम्बोधन। १२० हिंसादि। १२१ अनेक रूप अर्थ। १२२ अकस्मात्। १२३ निन्दा। १२४ यहा से।

१-अम्। आम्। तसिवती। २ तेनेह न-पचति कल्पम्। पचतिरूपम्। स्मारं स्मारं। जीवसे। पिबध्यै—'तद्धितश्चासर्वविभक्तिः' जिससे सब विभक्ति न उत्पन्न होती हो (अर्थात् एकवचन ही उत्पन्न होता हो) वह तद्धितान्त अव्यय होता है। अनभिमत (उभय शब्दादि) अव्यय न हो इसलिये परिगणन है। १—स्वीकार आदि। 'तेनैकदिक्, तसिश्च' से तसि-प्रत्ययान्त, 'तेन तुल्य'—से विहित वति-प्रत्ययान्त भी अव्यय हैं। २—थोडा पकाता है। मधुर पाक करता है। यद्यपि ये दोनो शब्द असर्व-विभक्ति तद्धितान्त है, तथाऽपि परिगणित न होने से अव्यय नहीं। 'कृन्मे-जन्तः' कृदन्त जो मान्त तथा एजन्त अव्यय होता है। स्मृधातु से 'आभी-क्ष्ण्ये णमुल् च' से णमुल्, 'अचो ञ्णिति' वृद्धि, 'उरण्'—से र-पर (आर्) 'नित्यवीप्सयोः' मे द्वित्व। यह मान्त कृदन्त होने से अव्यय। 'तुमर्थेसे-सेनसे-' से 'असे' प्रत्ययान्त है जीव से। एजन्त कृदन्त होने से अव्यय है। 'तुमर्थे-' से शध्यै प्रत्ययान्त। यह भी एजन्त होने से अव्यय है।

कृत्वा । उदेतोः । विसृपः—'क्त्वातोसुन्कसुनः' क्त्वा तोसुन् तथा कसुन् प्रत्ययान्त अव्यय होगा। 'समानकर्तृ' से कृ-धातु से क्त्वा। उत् उपसर्ग से युक्त इण्-धातु से 'भावलक्षणे इ ण्' से तोसुन् प्रत्ययान्त। 'सृपितृदोः कसुन्' से कसुन् प्रत्ययान्त है।

अधिहरि। तत्र शालायाम्। विहितविशेषणान्नेह—अत्युच्चैसौ। वगाहः। अवगाहः। पिधान। अपिधानम्—भगवान् पर। विभक्त्यर्थ में 'अव्ययीभावश्च' से अव्ययीभावसमास भी अव्यय सज्ञक होता है। 'अव्ययादाप्सुपः' अव्यय से विहित आप् और सुप् का लुक्(लोप) हो जाता हे। तत्र से विहित आप् का लुक् हो गया। स्त्री लिङ्ग है यह दिखाने के लिये 'शाला' शब्दका प्रयोग किया गया। 'उच्चै अतिक्रान्तः' इस विग्रह मे 'अत्यादयः क्रान्ता०' से समासः। 'अव्यया०' सूत्र मे 'अव्यय से विहित' कहने से 'अत्युच्चैसौ' मे सुप् का लुक् नहीं हुआ, 'उच्चैः' का अव्यय होने पर भी 'अत्युच्चैसौ' यह समास अव्यय नहा है। यद्यपि अव्यय सज्ञा मे तदन्त विधि है, तथापि गौण मे नहीं, प्रकृत 'उच्चैः' अन्योपसर्जन होने से गौण है, अतः अव्यय नही। 'वष्टि भागुरिरल्लोपमवाप्योरुपसर्गयो.। आप चैव हलन्ताना यथा वाचा निशा दिशा ॥' आचार्य भागुरि अव अपि रूप उपसर्गो के अकार का लोप मानते है। इसी से अव-अपि के अ का पाक्षिक लोप हुआ। हलन्त शब्दों से 'आप्' भी होता है-ऐसा मानते है, जिस से 'वाच्' तथा 'निश्' शब्द से आप् करने पर वाचा-निशा, ऐसा आबन्त हो जाते है। अव्यय का स्वरूप प्रतिपादक अथर्व श्रुति का वचन है—"सदृश त्रिषु लिङ्गेषु सर्वासु च विभक्तिषु। वचनेषु च सर्वेषु यन्न व्येति तदव्ययम् ॥" जो तीनों लिङ्ग सभी विभक्ति और वचनों मे विकृत या भिन्नरूप न हो वह अव्यय है ॥ इत्यव्ययप्रकरणम् ॥

स्त्रीप्रत्यय प्रकरण

अजा। अजादिभिः स्त्रीत्वस्य विशेषणान्नेह पञ्चाजी। अजा। एडका। अश्वा। चटका। मूषिका। बाला। वत्सा। १—होडा। मन्दा। विलाता। २-सम्फला भस्त्रफला। ३—सत्पुष्पा। प्राक्पुष्पा। प्रत्यक्पुष्पा। ४—शूद्रा। पुयोगे तु शूद्री

अमहत्पूर्वा किम् ?–महाशूद्री । ५–क्रुञ्चा । उष्णिहा । देवविशा । ६–ज्येष्ठा । कनिष्ठा । मध्यमा । ७–कोकिला—बकरी । 'अजाद्यतष्टाप्' 'अज' आदि है जिन शब्दो के, तथा अदन्त शब्दों से स्त्रीत्व द्योत्य (प्रकटनीय) होने पर टाप् प्रत्यय होगा । अदन्त से पृथक् अजा, आदि शब्दों को कहने का प्रयोजन 'वयसि प्रथमे' 'जातेरस्त्री–' इत्यादि आगे कहे जानेवाले ङीष् और ङीप् को, जो कि अदन्त टाप् के अपवाद है, वारण करना है । 'चुटू' तथा 'हलन्त्य' से ट और प का इत्संज्ञा-लोप । अजादि स्त्रीत्व का विशेषण है, अत 'अजादिगत स्त्रीत्व जहाँ द्योत्य है' कहने से 'पञ्चाजी' यहाँ (पञ्चानाम् अजाना समाहारः–) समास का अर्थ समाहार का स्त्रीत्व द्योत्य होने के कारण टाप् न होकर 'तद्धितार्थ'–इत्यादि से द्विगुसमास, 'अकारान्तो'–इत्यादि से स्त्रीत्व, 'द्विगोः' से ङीष् होगा ।

भेड़ा । घोडी । चिरैई । चूही । बालिका । १ तीनों प्रथमावस्थाबोधक हैं । २ समृद्धफल वाली लता, मशक जैसा फलवाली लता । 'सम्भस्त्राजिनशण-पिण्डेभ्य फलात्' वा० सम् भस्त्र अजिन शण पिण्डपूर्वक फल शब्द से टाप् । ३ 'सदच्काण्डप्रान्तशतैकेभ्यः पुष्पात्' वा० सत् अच् (अञ्चु) काण्ड प्रान्त शत एक—इन से परे पुष्प शब्द से टाप्, 'पाककर्ण'० इत्यादि से ङीष् नहीं होगा । ४ 'शूद्रा चामहत्पूर्वा जातिः' वा० शूद्र जाति वाच्य हो 'महत्' शब्द पूर्व मे न हो—ऐसे शूद्र शब्द को स्त्रीलिंग में टाप्, होगा । 'पुंयोगादाख्यायम्' 'शूद्रस्य स्त्री' इस अर्थ मे ङीप् ही होगा । 'महत्' शब्द पूर्व मे होने पर तो जातिलक्षण ङीष् होगा अर्थ—क्षत्रिय से शूद्रा मे उत्पन्न जो 'उग्रा' मे ब्राह्मण से उत्पन्ना स्त्री । ५ पाद्यविशेष । छ्दो विशेष । मरुद्गण । ६ ज्येष्ठादि ३ नों शब्दो को पुयोग (ज्येष्ठस्य स्त्री इत्यादि) मे भी टाप् ही होगा । ७ कोयल, जाति मे भी टाप् ।

१ अमूला । २ कर्त्री । ३ दण्डिनी । ४ भवती । ५ भवन्ती । पचन्ती । ६ दीव्यन्ती । तेनेह न–७ उखास्रत् ८ पर्णध्वत्—१ बिना जडवाली । 'मूलान्नञः' वा० नञ् से पर मे रहनेवाले मूलशब्द से 'पाककर्णपर्णपुष्पफलमूल'०' से ङीष् न होकर टाप् ही होगा । २ करनेवाली—'ऋन्नेभ्यो ङीप्' सू० ऋदन्त और नान्तो से स्त्रीलिंग मे ङीप् होगा । ३ दण्डवाली—नकारान्त होने से

ङीप्। ४ आप। 'उगितश्च' सू० उक् इत् है ऐसे प्रातिपदिक से स्त्रीलिंग मे ङीप् होगा। सर्वादि मे पठित 'भवतु' अव्युत्पन्न प्रातिपदिक है। उसका उ इत् है। ५ पाक करती हुई और होती हुई। भूधातु के शतृ के रूप मे तथा पचधातु के शतृ के रूप। ङीप्। 'शप्श्यनो'-से शप् अन्त होने से नित्य नुम्। श्यन् का उदाहरण ६ दीव्यन्ती=खेलती हुई। ७ कुण्ड से खिसकनेवाली। 'उगिदचा' मे उगित्कार्य अञ्चुधातु को ही होगा— इस नियमन के कारण यहा ङीप् नही। क्विबन्त। ८ पत्ते से गिरनेवाली। यहा भी ङीप् नही।

प्राची। प्रतीची—पूर्व और पश्चिम दिशा। ये दोनो रूप अञ्चु-धातु के होने से उगित् के कारण ङीप् होगा। नलोप, 'अचः' से अ लोप। 'चौ' से दीर्घ।

अतिसुत्वरी। अतिधीवरी। शर्वरी—स्नान किये का अतिक्रमण करनेवाली। (सुत्वानमतिक्रान्ता)। धीवानमतिक्रान्ता, धारण करनेवाले को अतिक्रमण करनेवाली। शर्वरी रात्रि। 'वनो रच' वन् (ङ्वनिप्, क्वनिप्, वनिप्—३नों) अन्तवाले तथा तदन्त (वन्नन्तान्त) वाले प्रातिपदिक से स्त्रीलिंग मे ङीप् होगा, र अन्तादेश भी होगा। 'प्रत्ययग्रहणे यस्मात्स विहितस्तदादेस्तदन्तस्य ग्रहणम्' प० प्रत्यय कहने से अर्थात् प्रकृति प्रत्यय समुदाय का तथा उसके मध्यवर्ति का भी ग्रहण होगा। 'सुयजोर्ङ्वनिप्' ङ्वनिप् (वन्) के न को र। धीवरी मे क्वनिप्, यहा भी अतिधीवन् ङीप्, न को र। शर्वरी मे 'शॄ हिंसाया' से 'आतो वनिप्'। ङीप् न को र।

अवावा ब्राह्मणी। १ राजयुध्वा—हटानेवाली। 'ओणृ—अपनयने' धातु से 'अन्येभ्योऽपि दृश्यते' से वनिप्, 'विड्वनोरनुनासिकस्यात्' णृ को आ, अवादेश, अवावन्। ङीप् रत्व प्राप्त होने पर 'वनो न हश इति वक्तव्यम्' वा० हशन्त धातु से विहित जो वन् तदन्त और तदन्तान्त प्रातिपदिक से ङीप् तथा र न होगा। राजवत् रूप। १ राजा को लडा चुकनेवाली। 'राजनि युधि कृञः' क्वनिप्। वन्नन्तान्त है ङीब् और र नहीं।

बहुधीवरी। बहुधीवा—'बहुव्रीहौ' वा० बहवो धीवानो यस्याः सा। मे ङीब् रत्व विकल्प मे होगा। न होने पर राजवत् रूप।

द्विपदी । द्विपात् । १–द्विपदा ऋक् । एकपदा—दो तथा एक चरणवाली । 'पादोऽन्यतरस्याम्'–पाद्शब्द जो कृतसमासान्त ('सङ्ख्यासुपूर्वस्य' से पाद के अंतवाले अ का लोप) है, तदन्त प्रातिपदिक से ङीप् विकल्प से होगा। ङीप्, भत्वात् 'पादःपत्' से पत्। १—द्वौ पादौ यस्याः सा । एकः पादो यस्याः सा । 'टाबृचि' ऋचा वाच्य हो तो पाद् अंत से टाप् होगा।

पञ्च । चतस्रः—'न षट्स्वस्रादिभ्यः' षट् सञ्ज्ञकों से ङीप्-टाप् नहीं । 'षड्भ्यो लुक्' से जश्शस् का लुक् होने पर न-लोप हो जाने पर भी 'ष्णान्ता षट्' से षट् संज्ञा के प्रति 'नलोप सुप्स्वर०' से न-लोप असिद्ध होने के कारण ('पञ्चन्' नान्त है) 'न षट्' से ङीप् टाप् का निषेध हो जाता है। पञ्चन् मे नान्तलक्षण ङीप् तथा चतसृ मे ऋदन्त लक्षण ङीप् प्राप्त था।

सीमा । सीमानौ—अर्थ-सीमा-अवधि । 'मनः' मन् अन्त से भी ङीप् नहीं होगा । राजवत् रूप हैं ।

बहुयज्वा बहुयज्वानौ—बहुत यज्ञ करनेवाले जिस शाला मे हो वह । 'अनो बहुव्रीहे'। अन् अन्तवाली बहुव्रीहि (बहवो यज्वानो यस्या सा) से ङीप नही होगा। राजवद्रूप।

सीमा, सीमे सीमानौ । दामा, दामे दामानौ । बहुयज्वा, बहुयज्वे बहुयज्वानौ—दाम-रस्सी । 'डाबुभाभ्यामन्यतरस्याम्' 'मनः' 'अनो०' इन दोनों सूत्रों से कथित मन्नन्त (औणादिक मनिन् प्रत्ययान्त) और अन्नन्त से डाब् विकल्प से होगा । सीमन्-शब्द से डाप् टिलोप। सुलोप। 'मनः' से भी ङीप् निषेध । सु-मे राजवद्रूप । औ मे शी तथा गुण, विकल्प से । पक्षमे नान्तोपधादीर्घ । दाम–स्त्रीनपुंसक है । दोनों लिङ्गों मे औ को शी-गुण । स्त्रीलिंग मे पक्ष मे मनिन्नन्त होने से उपधादीर्घ। बहुयज्वन् से डाप् टिलोप, सु का हल्ङ्यादि लोप । औ मे डाप् पक्ष मे शी । पक्ष मे नान्तोपधादीर्घ।

बहुराज्ञी बहुराज्ञ्यौ । बहुराजा, बहुराजे, बहुराजानौ—बहुतसे राजोंवाली (नगरी) । 'अनो बहु०' से ङीप् निषेध। डाप् विकल्प से। विकल्प से ङीप् के लिये—'अन उपधालोपिनोऽन्यतरस्याम्' अन्नन्त उपधालोपी बहुव्रीहि से ङीप् विकल्प से होगा । बहुराजन्-ङीप्, अल्लोप, सुलोप। श्चुत्व । औ में

यण्। डाप् तथा नान्त पक्षों मे सु मे एक ही रूप। डाप्—औ मे शी गुण। नान्त मे उपधा–दीर्घ।

सर्विका। कारिका—सभी (सर्वा)। करानेवाली, अथवा श्लोक विशेष। 'प्रत्यय-स्थात् कात्पूर्वस्यात इदाऽप्यसुप' प्रत्ययगत क से पूर्व के अकार (ह्रस्व) को इ होगा 'आप्' परे रहते, वह 'आप्' भी सुप् से परे न हो। सर्व-शब्द से स्त्रीत्वविवक्षा मे टाप्, सवर्णदीर्घ। 'अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक् टेः' से अकच् (अक्) सर्वका, इत्व। कृधातु को ण्वुल्, 'युवोरनाकौ' से अक्, 'अचो ञ्णिति' से वृद्धि (कृ को आर्), कारक से टाप् इत्व। सुलोप।

(१) अतः किम्? नौका। (२) प्रत्ययस्थात् किम्? शक्नोतीति शका। (३) असुपः किम्? बहुपरिव्राजका नगरी। (४) कात् किम्? नन्दना। (५) पूर्वस्य किम्? परस्य मा भूत्–कटुका। (६) अत इति तपरः किम्? राका। (७) आपि किम्?।

कारकः—१—नौ शब्द से स्वार्थ मे क प्रत्यय, टाप्, 'क' से पूर्व में अ नही। २—शक्लृ-धातु का क है, प्रत्ययगत नहीं। ३—'बहवः परिव्राजकाः यस्या' समास मे 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से बहु-शब्द से आगे का सुब्-लुक् होने पर सिद्ध बहुपरिव्राजक-शब्द से आप् जो है वह लुप्त सुबपेक्षया ('प्रत्ययलोप०' के अनुसार) पर है। ४—क-से पूर्व का अ नहीं। ५–कटु-शब्द से स्वार्थ में क है, 'पूर्व के अकार को' कहने से 'कटुक' के द्वितीय क से आगे 'इ' नहीं हुआ। ६—अत् मे तपर न होता तो 'रा' के आ को इ होता। ७—'आप् परे रहते' कहने से यहाँ इ नही।

मामिका। नारिका—मेरी। मनुष्यों को आवाज 'नरान् कायति' देनेवाली। 'मामकनरकयोरुपसंख्यानम्' वा० मामक तथा नरक शब्दों के क के पूर्व अकार को इत्व कहना चाहिये। पूर्वसूत्र से अप्राप्त था।

दाक्षिणात्यिका। इहत्यिका—दक्षिण के पास मे उत्पन्न। यहाँ उत्पन्न। 'दक्षिण-स्याम् अदूरे' विग्रह में 'दक्षिणादाच् से' आच्। 'तद्धितश्चा०' से अव्यय। भव आदि अर्थ मे 'दक्षिणापश्चात्पुरसस्त्यक्' से त्यक्। 'किति च' से आदिवृद्धि, दाक्षिणात्य शब्द से टाप्, स्वार्थिक क प्रत्यय, 'केऽणः' से

त्य के आगे टाप् के आ-को ह्रस्व। फिर टाप्। 'त्यक्त्यपोश्च' वा० त्यक् तथा त्यप् अंत मे भी प्रत्ययस्थ क से पूर्व अ को इ कहना चाहिये। इहत्यिका मे 'अव्ययात्यप्' से त्यप्, क, इ, टाप्।

यका। सका। यकाम्। तकाम्—जो। वह। 'न यासयोः' यत्तद् के अ को इ नहीं होगा। 'अव्ययस०' से अकच् अन्त स्त्रीलिंग का रूप है। त्यदाद्यत्व, टाप्, सुब्लोप। 'तदो सः-' से त को सा। सूत्र मे 'या-सा' रूप प्रथमान्त का अनुकरण ही विवक्षित नहीं—यह दिखाने के लिये अन्य दो उदाहरण अव्यय हैं।

अधित्यका। उपत्यका—पर्वत की ऊपर की तराई। नीचे की तराई। 'त्यकनश्च निषेधः' वा० 'उपाधिभ्या त्यकन् आसन्नारूढयोः' से विहित त्यकन् प्रत्ययान्त के कात्पूर्व अ को इ नहीं।

जीवका। भवका—जीये। हो। आशीर्वाद मे जीव-भूधातु से 'आशिषि वुनश्च न' वा० से विहित जो वुन्, जिसको कि 'युवोरनाकौ' से 'अक' हो जाता है, उस अ को भी इ नहीं होगा।

देवदत्तिका। देवका—देवदत्त शब्द से स्वार्थिक कप्रत्यय। टाप्। इत्व। 'अनजादौ च विभाषा लोपो वक्तव्यः' से दत्त-शब्द का पाक्षिक लोप करने पर 'उत्तरपदलोपे न' वा० से इत्त्व का निषेध।

क्षिपका। ध्रुवका। कन्यका। चटका—फेंकने वाली। स्थिर। बालिका। गौरैया। 'क्षिपकादीना च न' क्षिपका आदि शब्दो का भी इत्त्व नहीं होगा।

तारका। तारिका—नक्षत्र। 'तारका ज्योतिषि' वा० नक्षत्रवाचक मे इ नहीं। अन्यत्र-'तारनेवाली' आदि अर्थ में इत्त्व होगा।

वर्णका। वर्णिका—ओढना। 'वर्णका तान्तवे' वा० तन्तुओं से बने-इस अर्थ मे इत्त्व नही होगा। ग्रन्थविशेष आदि अर्थ मे इत्त्व होगा।

वर्तका। उदीचां तु-वर्त्तिका—पक्षिविशेष। 'वर्त्तका शकुनौ प्राचाम्' वा० पक्षिविशेष के अर्थ मे प्राचीनों के मत मे इत्त्व नही, अर्वाचीनों के मत में तो इत्त्व।

अष्टका। अष्टिका अन्या—श्राद्धविशेष। 'अष्टका पितृदैवत्ये' वा० पितृदेवतार्थक क्रिया वाच्य होने पर इत्त्व नहीं, अष्टाध्यायी-आदि अर्थ में इत्त्व होगा।

सूतिका, सूतका, पुत्रिका, पुत्रका, वृन्दारका, वृन्दारिका—प्रसवकरनेवाली, पुत्री, देवस्त्री। 'सूतकापुत्रिकावृन्दारकाणा वेति वक्तव्यम्' वा० सूतकापुत्रका-वृन्दारका शब्दों मे अ विकल्प से होगा। 'वेति'–'वा-अ-इति' यह पद-च्छेद है। क से पूर्व को अकारादेश विकल्प से होगा। पुत्र-शब्द को शार्गरवादि होने से ङीन्, स्वार्थ मे क प्रत्यय, 'केऽणः' से ह्रस्व, टाप्। इसी इ को अ। सूतका वृन्दारका शब्दों मे 'प्रत्ययस्थात्'–से प्राप्त नित्य इत्त्व का विकल्प है।

आर्यका, आर्यिका। चटकका, चटकिका—पूज्या, गौरेइया। 'उदीचामातः स्थाने यकपूर्वायाः' य तथा क पूर्ववाला स्त्रीप्रत्यय सबन्धी आ के स्थान मे जो अ, क से पूर्ववाले उस अ को इ विकल्प से होगा आप् परे रहते। आर्या-चटका शब्दों से स्वार्थिक क, 'केऽणः' से ह्रस्व आ को। फिर से टाप्। इत्त्व विकल्प।

आत किम्? सांकाशियका। यकेति किम्? अश्विका—'आ के स्थान मे' कहने से साङ्काश्यका–शब्द मे यकार से आगे के अ को इत्त्व विकल्प से न होकर नित्य ही होगा। अश्वा–शब्द से स्वार्थिक क ह्रस्व, टाप्। यहाँ आ के स्थानापन्न होने पर भी अ को इत्त्व विकल्प न होकर नित्य ही होगा। यह अ य-क पूर्व नहीं।

स्त्रीप्रत्ययेति किम्? शुभयिका। सुनयिका। सुपाकिका—'स्त्रीप्रत्यय के आ' कहने से 'शुभयका' मे इत्व नित्य ही होगा। यहाँ तो आ 'या–प्रापणे' धातुसम्बन्धि है। 'धात्वन्तयकोस्तु नित्यम्' वा०। (अच्छी नीतिवाली। अच्छी तरह पकी) धातु के अन्तवाले य तथा क से आगे के अ को इ नित्य होगा। 'नय-पाक' यहाँ य-क धातु सम्बन्धी होने से 'प्रत्ययस्थात्' से नित्य इत्त्व।

अनेषका, परमैषका, अद्रके, परमद्रके, 'स्विका'–'परमस्विकेति', निर्भस्त्रका, निर्भस्त्रिका, एषका, एषिका, एतिके, एतिकाः, अजका। अजिका। ज्ञका, ज्ञिका, द्रका, द्रिके। निःस्वका, निस्त्रिका—'भस्त्रैषाजाज्ञाद्वास्वा नञ्पूर्वाणामपि' भस्त्रा–एषा–अजा–ज्ञा–द्वा–स्वा इनके नञ्पूर्व के भी अ को इ विकल्प से होगा। विधि आग होनेसे तदन्त से भी। एतत् शब्द को टि से पहले 'अव्यय'–से अकच्, एतकद् सु, 'तदोः–' से सत्व, 'आदेश–' से षत्व, त्यदाद्यत्व, पररूप, टाप्, सवर्ण-दीर्घ, हल्ङ्यादिलोप, एषका, नञ् समास, 'नलोपो–' से न का लोप। 'तस्मा-

न्नुडचि' से नुट्। इसी प्रकार 'परमा चासौ एषका' कर्मधारय। इन दोनों स्थानों मे आप्, न और परमा के आगे के लुप्त('सुपो धातुप्रातिपदिकयोः'से) सुप् से परे होने से इत्व नहीं होगा, यतः 'प्रत्यय–'मे 'असुपः' यह निषेध है। न द्वके अद्वके, परमे च ते द्वके च, यहाँ भी टाप् लुप्त सुप् से परे है, अतः इत्व नहीं। सञ्ज्ञा (नाम) और उपसर्जन मे सर्वनाम संज्ञा न होनेसे स्वार्थिक क करने पर ही इत्व विकल्प,प्रकृतसूत्र का उदाहरण है।इसीप्रकार विशेषणीभूत स्वशब्द। आत्मीयवाची स्वशब्द को अकच् होकर स्त्रीत्वविवक्षा मे टाप् करने पर 'स्विका-परमस्विका' ऐसा नित्य ही इत्व। भस्त्रा=मसक, से निर्गत (भस्त्राया. निर्गता) अर्थमे इत्व विकल्प। एतच्छब्द के अकच् अन्त का रूप। इसी से इत्त्व विकल्प। सूत्र मे 'भस्त्रैषा'–इस प्रकार कृतषत्व के ग्रहण के कारण द्विवचनादि मे ('स' न होने से) इत्त्व–विकल्प नहीं, 'प्रत्यस्था–'से नित्य इत्त्व। इसी प्रकार अज-आदि उदाहरणोंमे भी इ-विकल्प।

गङ्गका, गङ्गिका। अज्ञाता अखट्वा अखट्विका। अखट्विका, अखट्वाका— 'अभाषितपुस्काच्च' जो पुंलिग का विशेषण न हुआ हो, उससे विहित, आ के स्थान के अ को इ विकल्प से होगा। गगा शब्द से स्वार्थिक क क परे रहते आ को ह्रस्व ('केऽणः' से), इत्त्व विकल्प। 'अविद्यमाना खट्वा यस्याः' इस बहुव्रीहि मे अज्ञाताद्यर्थक क परे रहते आ को ह्रस्व करने पर (बहुव्रीहि में पुंलिग का भी विशेषण होने से अभाषितपुंस्कता नहीं) नित्य ही इत्त्व। शैषिक कप् करने पर 'केऽणः' के अपवाद 'न कपि' से ह्रस्व निषेध, पर 'आपोऽन्यतरस्या' से ह्रस्व विकल्पता मे यहाँ के टाप् अभाषितपुस्क से विहित होनेके कारण तत्स्थानिक ह्रस्व को इत्त्व विकल्प से होगा।

गङ्गाका। उक्तपुंस्कात्तु–शुभ्रिका—'आदाचार्याणाम्' अभाषितपुंस्क से विहित आ के स्थान मे स्थित अ ('केऽण.' से) को आ विकल्प से होगा। भाषितपुंस्क से तो नित्य ही इत्त्व होगा। शुभ्रा क, ह्रस्व, टाप्, इ।

कुरुचरी। उपसर्जनत्वान्नेह (१) बहुकुरुचरा, नदट्–नदी। वक्ष्यमाणा। (२) सौपर्णेयी। (३) ऐन्द्री। (४) औत्सी। (५) ऊरुद्वयसी। ऊरुदघ्नी। ऊरुमात्री। (६) पञ्चतयी। (७) आक्षिकी। (८) लावणिकी (९) यादृशी। (१०) इत्वरी—कुरुदेश मे चलनेवाली। बहुत से कुरु में (देश) चलनेवाले

हैं जिसमे। 'टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्तयप्ठक्ठञ्कञ्क्वरपः' अनुपसर्जन (विशेषण नहीं) ऐसे टित्, ढ, अण्, अञ, द्वयसच्, दघ्नच्, मात्रच्, तयप्, ठक्, ठञ्, कञ्, क्वरप्, एतदन्त अदन्त प्रातिपदिक से स्त्रीत्व विवक्षा मे ङीप् होगा। 'चरेष्टः' से (कुरुषु चरतीति) अधिकरण उपपद रहते ट प्रत्यय, टित्वात् ङीप्। १—उपसर्जन होने पर तो अदन्तत्वात् टाप् होगा। टित् प्रत्यय, प्रातिपादिक तथा धातु रूप से ३ प्रकार है। नदट् पचादिगण पठित प्रातिपादिक है, अर्थ नदी है। वक्ष्यमाणा–वच–धातु के कर्मणि लृट् से 'लृटः सद्वा' से शानच्, 'स्यतासी लृलुटोः' से स्य, कुत्व तथा षत्व। मुगागम, णत्व। टाप्। यद्यपि यहाँ लृट् स्थानापन्न आदेश टित् तथा उगित् होने से ङीप् प्राप्त है, पर 'लाश्रयमनुबन्धकार्यं नादेशानाम्' प० अर्थात् लृट्स्थानापन्न आदेश स्थानिवद्भाव नहीं प्राप्त करता। २—सुपर्णीकी पुत्री (सर्पविशेष)। 'स्त्रीभ्यो ढक्' से ढक्, 'आयनेय्' इत्यदि से एय् आदेश। ङीप्। ३—इन्द्रदेवताक अथवा इन्द्रसम्बन्धी। 'साऽस्य देवता' अथवा 'तस्येदम्' से अण्, ङीप्। ४—उत्समुनि सम्बन्धी अथवा प्रवाहसंबन्धी। 'उत्सादिभ्योऽञ्' ५—जाँघ प्रमाणवाली। 'प्रमाणे द्वयसज्दघ्नञ्मात्रचः' (ऊरु प्रमाणम् अस्याः) से परिमाण अर्थ मे द्वयसच्, दघ्नच्, मात्रच्-प्रत्यय। ङीप्। ६—'पञ्च अवयवा यस्या' ऐसे विग्रह में 'संख्याया अवयवे तयप्' तयप्, ङीप्। ७—जुआ खेलनेवाली। 'अक्षैर्दीव्यतीति' अर्थ में 'तेन दीव्यति खनति जयति जितम्' से ठक्, आदिवृद्धि, ठ को इक् 'यस्येति च' से अकारलोप, आक्षिक से ङीप्। ८—नमक बेचनेवाली। 'लवणं पण्यम् अस्याः' अर्थ में 'लवणाट्ठञ्', 'ठस्येकः' से इक्, लावणिक से ङीप्। ९—जैसी। 'त्यदादिषु दृशः' से कञ्, 'आ सर्वनाम्नः' से यच्छब्द को आ। ङीप्। १०—कुलटा। 'इण् गतौ' 'इण्नशजिसर्तिभ्यः क्वरप्' 'ह्रस्वस्य पिति कृति' तुक्। इत्वर शब्द से ङीप्।

चौरी। स्त्रैणी। पौंस्नी। शाक्तीकी। (१) आढ्यङ्करणी। (२) तरुणी। तलुनी—चौर्य करनेवाली। 'छत्रादिभ्यो णः' से ण। 'चुरा शीलम् अस्याः' अर्थ में 'ताच्छीलिके णेऽपि' वृद्धि। ङीप्। स्त्रीसम्बन्धी तथा पुरुष संबंधी। 'स्त्री पुंसाभ्या०' से नञ् और स्नञ्। आदिवृद्धि, (णत्व) 'नञ्स्नञीकक्ख्यु-

स्तरुणतलुनानामुपसंख्यानम्' ङीप् 'यस्येति च' से अलोप। शक्ति नामक आयुधवाली। 'शक्तिः प्रहरणं अस्या' अर्थ में 'शक्तियष्ट्योरीकक्' से ईकक्, आदिवृद्धि। ङीप्। १—गरीब धनी बनाया जाता है इससे। 'आढ्यसुभग'—इत्यादि से कृञ् को ख्युन्। 'युवोरनाकौ' से ख्युन् के यु को अनादेश। 'अरुर्द्विष०' से मुम्। णत्व। ङीप्। भलोप। २—युवती। तरुण-तलुन शब्द से उपरोक्त वार्तिक से ङीप्।

गार्गी। **द्वीपे भवा-द्वैप्या**। **दैव्या**—गर्ग की कन्या। 'गर्गादिभ्यो यञ्' से यञ्, आदिवृद्धि। 'यस्येति च' से र्ग के अ का लोप। 'यञश्च' यञन्तसे स्त्रीलिंग मे ङीप् होगा। 'हलस्तद्धितस्य' हल् से परे उपधाभूत य का लोप। यहाँ अल्लोप आभीय होने से असिद्ध है, अतः य उपधा है।

द्वीप मे उत्पन्न। 'अनपत्याधिकारस्थान्न ङीप्' वा० अपत्याधिकार ('तस्यापत्यम्' अधिकार) मे विहित से भिन्न यञन्त से ङीप् नहीं होगा। 'द्वीपादनुसमुद्रं यञ्' से यञ्। आदिवृद्धि। 'यस्येति च' टाप्। देवता का पुत्र अर्थ मे 'देवाद्यञञौ' से यञ्, आदिवृद्धि आदि। दैव्य से टाप्। वार्तिक मे 'अधिकारस्थ' न कहने से यह यञ् भी अधिकारस्थ नहीं, प्राग्दीव्यतीय है। अतः ङीप् हो जाता। यहा यञ् अपत्यार्थक तो है, अपत्याधिकारस्थ नहीं।

गार्ग्यायणी। **लौहित्यायनी**। **कात्यायनी**—गार्ग्यपुत्री। लोहितपुत्री। कात्यायनपुत्री। 'प्राचां ष्फ तद्धितः' यञन्त से ष्फ विकल्प से होगा स्त्रीलिंग मे, वह प्रत्यय 'तद्धित' माना जायगा। 'षः प्रत्ययस्य' प्रत्यय की आदि ष इत् होगा। फ रहा। 'आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्' प्रत्यय के आदिभूत फ ढ ख छ घ्—इनको क्रम से आयन् एय् ईन् ईय् इय् होंगे। आयन्। तद्धितत्वात् प्रातिपदिक। वक्ष्यमाण 'षिद्गौरा'—से ङीष्। णत्व-गार्ग्यायणी मे। 'सर्वत्र लोहितादिकतन्तेभ्य' लोहितादि शब्दों से कतशब्दान्त यञन्त से नित्य ष्फ होगा। लोहितादिगर्गादि यञन्त से ष्फ। इसी प्रकार कत की पुत्री-यञ् ष्फ आदि पूर्ववत्।

कौरव्यायणी। **माण्डूकायनी**। (१) **आसुरायणी**—कुरु और मण्डूक की पुत्री 'कौरव्यमाण्डूकाभ्यां च' इन दो से ष्फ होगा। 'कुर्वादिभ्यो ण्यः' आदि-

वृद्धि आदि। 'ढक्च मण्डूकात्' अण्। आदिवृद्धि। ष-इत् लोप आयन्। ङीष्। १—असुर की पुत्री। 'आसुरेरुपसङ्ख्यानम्' वा० आसुरि शब्द से भी ष्फ होगा। 'असुरस्य अपत्यं स्त्री' अर्थ मे 'अत इञ्' से इञ्, आदि-वृद्धि, आसुरि से ष्फ, ष इत्, आयन्, भलोप, णत्व, षित्त्वात् ङीष्।

कुमारी। वधूटी। चिरण्टी। अतः किम्? शिशुः—अप्राप्तयौवना। युवती। 'वयसि प्रथमे' प्रथमवयो वाची अदन्त से स्त्रीलिंग मे ङीप्। 'वयस्यचरम इति वक्तव्यम्' वा० 'अन्तिम वय से भिन्न वयोवाची अदन्त से'—ऐसा कहना चाहिये। तभी इन आगे के शब्दों मे ङीप् होगा—वधूट-चिरण्ट शब्द यौवनार्थक है। ङीप्। 'अदन्त से' कहने से शिशु शब्दसे ङीप् न हुआ।

त्रिलोकी। त्रिफला। त्र्यनीका सेना—तीन लोक। हरड़, बहेड़ा, आँवला। तीन अग्रभागवाली सेना। 'द्विगोः' अदन्त द्विगु से ङीप्, 'त्रयाणां लोकानां समाहारः' विग्रह है। त्रिफला त्र्यनीका मे 'अजाद्यतः' से अजादित्वात् टाप्। सर्वत्र 'अकारान्तोत्तरपदो द्विगुः स्त्रियामिष्टः' अकारान्त उत्तर पद वाला द्विगु स्त्री लिंग मे होगा।

पञ्चाश्वा। द्विबिस्ता। द्व्याचिता। द्विकाम्बल्या। परिमाणान्तात्तु—द्व्याढकी। तद्धितलुकि किम्? पञ्चाश्वी—पाच घोड़ों से खरीदी हुई। दो बिस्ता ('सुवर्णबिस्तौ हेम्नोऽक्षे' अमर)। सोना पिघलाती है। परिमाण विशेषों को ढोती है। दो कबलों (वून का सौ पल) से खरीदी है। दो फसेरी पकाने वाली। 'अपरिमाणबिस्ताचितकम्बल्येभ्यो न तद्धितलुकि'। परिमाण अन्त वाला नहीं ऐसे, तथा बिस्त आचित कम्बल्य अत द्विगु से ङीप् न होगा, तद्धित लुक् होने पर। 'पञ्चभिरश्वैः क्रीता पञ्चाश्वा' अर्थमे 'आर्हाद०'इस अधिकार मे 'तेन क्रीतम्' से ठक्, उसका 'अध्यर्ध०' से लोप। इसी सूत्र के कारण 'द्विगोः' से ङीप् न होगा। अपि तु टाप्। 'द्वौ बिस्तौ पचति' अर्थ मे 'तद्धितार्थ०' से द्विगु। 'सम्भवत्यवहरतिपचति०' से ठक् का 'अध्यर्ध०' से लुक्। टाप्। 'द्वौ आचितौ ('आचितो दश भाराः स्युः') वहति' अर्थ मे 'आढकाचित०' से ख, उसका लुक्। टाप्। 'कम्बलाच्च संज्ञाया' से यत्। 'तेन क्रीतं' से ठक्। लुक्। टाप्।

'द्वावाढकौ पचतीति' विग्रह मे प्राग्वतीय ठञ्, 'अध्यर्ध' से लुक्।

'द्विगो.' से ङीप्। आढक परिमाणविशेष है, अतः ङीप् का निषेध नहीं है। 'तद्धित लुक् होने पर' न कहने से 'पञ्चानाम् अश्वाना समाहारः' यहाँ भी ङीप् न होता।

द्विकाण्डा क्षेत्रभक्ति । क्षेत्रे किम्? द्विकाण्डी रज्जुः—दो दंडवाली खेत। दो दण्डनापवाली रस्सी। 'काण्डान्तात् क्षेत्रे' क्षेत्र के विषय मे काण्ड अन्त-वाला जो द्विगु है, उससे ङीप् न होगा तद्धितका लुक् होने पर। 'द्वे काण्डे प्रमाणम् अस्याः क्षेत्रभक्तेः द्विकाण्डा' अर्थ मे 'प्रमाणे द्वयसच्' से विहित मात्रच् का 'प्रमाणे लः द्विगोर्नित्य' वा० से लुक्। सूत्र मे 'क्षेत्रे' न कहने से उसी प्रमाणार्थक मात्रच् के लुक् होने पर, यहा भी ङीप् नही होने पाता।

द्विपुरुषी, द्विपुरुषा वा परिखा। (१) कुण्डोध्नी। स्त्रियां किम्? कुण्डोधो धैनुकम्—दो पुरसा बडी खाई। 'पुरुषात्प्रमाणेऽन्यतरस्या' परिमाण मे जो पुरुष-शब्द तदन्त द्विगु से ङीब् विकल्प से होगा तद्धितलुक् होने पर। 'द्वौ पुरुषौ प्रमाणम् अस्याः' अर्थमे विहित मात्रच् का 'प्रमाणे लः द्विगोर्नित्य' से लुक्, 'अपरिमाण०' से नित्य ङीब्निषेध होने पर इस से विकल्प। १—कुंड जैसा थनवाली। 'कुण्डमिव ऊधो यस्याः' अर्थ मे 'ऊधसोऽनङ्' ऊधस् अतवाली बहुव्रीहि से अनङ् आदेश होगा स्त्रीलिंग मे। 'ङिच्च' से स् को अन्। पर रूप। 'डाबुभाभ्या०' से वैकल्पिक डाप्, 'अन उपधा०' से वैकल्पिक ङीप्, तथा दोनों के अभाव मे 'ऋन्नेभ्यः०' से प्राप्त ङीप् का 'अनो बहु०' से निषेध प्राप्त होने पर 'बहुव्रीहेरूधसो ङीष्' 'ऊध' अन्त वाली बहुव्रीहि से स्त्रीलिंग मे ङीष् होगा। 'अल्लोपोऽनः' से अ का लोप। 'स्त्रीलिंग मे' न कहने पर गोसमूहार्थक—'धैनुक' के विशेषणीभूत कुण्डोधः (नपुं०) से भी अनङ् प्राप्त होता। अनङ् भी 'स्त्रियाँ' वा० से स्त्रीलिंग ही मे प्रवृत्त होगा।

द्व्यूध्नी। अत्यूध्नी। अ यूधाः—दो थानो। अतिशयित थनवाली। 'संख्याव्ययादेर्ङीप्' संख्या तथा अव्यय आदि वाले ऊधस् अंतशब्द से स्त्रीलिंग मे ङीप् (ङीषपवाद) होगा। 'द्वे ऊधसी यस्या०' अर्थ मे अनङ्। ङीप्, अल्लोप। अतिशयितम् ऊधो यस्याः—विग्रह। अनङ्, ङीप्, अल्लोप,

यह ङीप् अत एव अनङ भी बहुव्रीहि समास मे ही होंगे, अन्यत्र 'ऊधः अतिक्रान्ता' द्वि० तत्पु० मे नहीं।

द्विदाम्नी । उद्दामा वडवा । द्विहायनी बाला—दो रस्सी से युक्त। रस्सी से छूटी घोडी। दो बरस आयुवाली। 'दामहायनान्ताच्च' संख्या आदि मे है ऐसी, दाम अंत वाली और हायन अतवाली बहुव्रीहि से ङीप् होगा। 'द्वे दामनी यस्याः' द्विदामन् ङीप्, अल्लोप। यहा 'डाबुभा०' से डाप्, 'अन उपधा०' से ङीप्, 'अनो बहुव्रीहेः' से ङीप्-निषेध भी प्राप्त थे। 'संख्याव्य०' से अव्यय की अनुवृत्ति यहा न होने से 'उद्दामा' यहा ङीप् नहीं। नान्त है। 'द्वौ हायनौ यस्याः' अर्थ मे ङीप्। भलोप।

त्रिहायणी । चतुर्हायणी । द्विहायना, त्रिहायना, चतुर्हायना शाला—३ बरस, ४ बरसवाली। 'त्रिचतुर्भ्यां हायनस्य णत्व वाच्यम्' 'वयोवाचकस्यैव हायनस्य ङीब्णत्व चेष्यते' वा० त्रि और चतुर शब्दों से परे हायन को ण होगा, पर आयु बताने वाले हायन शब्दको ही ङीब् तथा णत्व होगा। २ ३-४-कक्षावाली हॉल। यहा के 'हायन' आयुवाचक न होने से ङीब् और णत्व नहीं, टाप्।

सुराज्ञी नाम नगरी । वेदे तु-शतमूर्ध्नी—अच्छे राजा वाली। सौ सिर वाली। 'नित्यं संज्ञाछन्दसोः' अन् अन्तवाली बहुव्रीहि से-जो उपधालोपी है-ङीप् हो संज्ञा और छन्द ('अन'- का अपवाद है) मे। राजन् और मूर्धन् में अल्लोप (उपधालोप) है।

अथो त इन्द्र केवलीर्विशः । 'मामकी तनू' । भागधेयी । पापी । अपरी । समानी आर्यकृती । सुमङ्गली । भेषजी । अन्यत्र केवला । मामिका—'केवल-मामक-भागधेय-पापापर-समानार्यकृत-सुमङ्गल-भेषजाच्च' इन नौ शब्दों से ङीप् होगा संज्ञा और छन्द मे। सुलोप। छन्द मे 'सुपा सुलुक्०'से सप्तमी का लुक्। ये सभी उदाहरण वैदिक है। लोक मे असंज्ञास्थल मे टाप् ही होगा। 'मामिका' मे 'मामकनरकयो'– वा० से इत्।

अन्तर्वत्नी । पतिवत्नी । (१) '**अन्तरस्त्यस्यां शालायां घटः**' । गर्भवती। जीवत्पतिका। अन्तर्वत्-पतिवत् ये दोनों शब्द निपातित हैं। '**अन्तर्वत्पतिवतोर्नुक्**' इनको स्त्रीलिंग मे नुक् न्,कित्त्वादन्तावयव। '**ऋन्नेभ्यो ङीप्**'से

ङीप्। १—प्रयोग प्रत्युदाहरण है। मतुब् गर्भिणी मे ही निपातित है। इस वाक्य मे 'तदस्या०' से मतुप् नही।

पतिमती पृथिवी—जीवद्भर्तृका मे ही 'वत्' का निपातन है। 'राजा से युक्त पृथिवी'—इस अर्थ मे वत्व नही, मतुप् ङीप्।

वसिष्ठस्य पत्नी। गृहस्य पतिः। गृहपत्नी—'पत्युर्नो यज्ञसंयोगे' पतिशब्द को न-कारादेश होगा यज्ञ के साथ स्वामित्व (फलभोक्तृत्व) सम्बन्ध होने पर। यज्ञादि मे दम्पती को एक साथही अधिकार शास्त्रतः प्राप्त है। 'ऋन्नेभ्यो'-से ङीप्। 'विभाषा सपूर्वस्य' पतिशब्दान्त-पूर्व मे शब्द के साथ रहने-वाले-प्रातिपदिक को 'न' विकल्प से होगा। गृहपति-शब्द पतिशब्दान्त तथा पूर्व मे गृह शब्द से युक्त (सपूर्व) भी है। ङीप्।

दृढपत्नी। दृढपतिः। वृषलपत्नी। वृषलपतिः। पत्नियौ। पत्नियः। सपूर्वस्य किम्? गवां पतिः स्त्री—पुष्ट पतिवाली। शूद्र की स्त्री। 'दृढः पतिः यस्याः' इस बहुव्रीहि मे भी विकल्प से न होगा। यद्यपि यहाँ 'पति' अन्यपदार्थ प्रधान बहुव्रीहि होने से उपसर्जन हो जाता है, तथापि 'अनुपसर्जनस्य' यह अनु-वृत्ति पत्यन्त का विशेषण है, न कि पति का। इसी प्रकार 'यज्ञसयोगे' की अनुवृत्ति भी नही होगी। शूद्रों को यज्ञाधिकार नहीं है, वहा भी विकल्प से 'न' होगा। यद्यपि विग्रह वाक्य ('वृषलस्य पतिः') मे सपूर्व तथा यज्ञ-संयोग भी नहीं है, तथापि ब्राह्मण स्त्री मे यज्ञादिसयोगादि से पत्नी शब्द जो व्युत्पादित हैं उसी का यहा गौण प्रयोग है। अथवा 'पत्नीव आचर-तीति' आचार क्विबन्त से कर्तरि क्विप् से पत्नी शब्द निष्पन्न हो जाता है। पर ऐसे पत्नी शब्द को अजादिवचनों मे इयङ होगा। 'सपूर्वस्य' कहने से 'गवा पतिः' (गायों की रक्षिका) यहा 'न' नही हुआ।

सपत्नी। एकपत्नी। वीरपत्नी—सौत। 'नित्य सपत्न्यादिषु' सपत्नी आदि शब्द सिद्ध होने के लिये नत्व नित्य होगा। 'समानः पतिः यस्या.' बहुव्रीहि मे समान को 'स' निपातित है। इस गण मे समान, एक, वीर, भ्रातृ, पुत्र-यह शब्द है।

पूतक्रतायी। वृषाकपायी। अग्नायी। (१) कुसितायी। (२) मनावी-मनायी। मनुः—पवित्र यज्ञ करनेवाले की स्त्री। लक्ष्मी व गौरी। अग्नि देवता।

१—दोनों देवता विशेष। 'पूतक्रतोरै च' पूतक्रतु को ऐ आदेश और ङीप् भी होगा। 'इय त्रिसूत्री पुयोग एवेष्यते' वा० (इसी प्रकरणपठित ३ सूत्र) पूतक्रतु की स्त्री। 'तु' के उ को 'ऐ'। आयादेश। 'वृषाकप्यग्निकुसित-कुसिदानामुदात्तः' इनको उदात्त ऐ आदेश होगा और ङीप् भी होगा, आयादेश। वृषाकपि की स्त्री ऐ, आयादेश। इसी प्रकार अग्नि-कुसित-कुसिद—इनको ऐ और ङीप् आयादेश। 'मनोरौ वा' 'मनोः स्त्री' अर्थ मे मनुशब्द को औ तथा ङीप्, अथवा उदात्त ऐ और ङीप्। आव्, और आय्। ऐ-औ के अभाव मे एतत्सनियोग-शिष्ट ङीप् भी नहीं। मनुः।

एनी, एता। रोहिणी, रोहिता—श्वेत। चित्र-लाल। 'वर्णादनुदात्तात्तोपधात्तो नः' जो अनुदात्तान्त और तकारोपध है तदन्त अनुपसर्जन (अविशेषण) प्रातिपदिक से विकल्प से ङीप् होगा और त को न आदेश भी होगा। ङीप् होने पर ही नत्व होगा, यतः यह संन्नियोगशिष्ट (दोनों एक साथ विहित) है एत-रोहित वर्णवाचक है। नत्व-ङीप्। रोहिणी मे णत्व।

'श्येनया शलल्या' अनुदात्तात् किम्? श्वेता। शितिः स्त्री—तीन अवयव सफेद है जिसकी, ऐसी शल्यमृग की सूई सी रोवाँ। ऊपर 'अनुपसर्जन' वर्ण का विशेषण न होकर वर्णान्त का विशेषण है। अतः 'त्रीणि एतानि यस्याः' अन्यपदार्थ प्रधान बहुव्रीहि मे भी एत शब्द के उपसर्जन होने पर भी 'त्र्येणी' यह समास अनुपसर्जन है। ङीप् नत्व। 'पूर्वपदात्०' से णत्व। 'घृतादीना च' फिट्-सूत्र से 'श्वेत०' शब्द घृतादि होने से अन्तोदात्त है। ङीप्-नत्व नही। शिति काला व सफेद। 'वर्णा'-में 'अतः' की ('अजाद्यतः०' से) अनुवृत्ति होने से शिति अदन्त न होने से ङीप् नत्व नहीं

पिशङ्गी पिशङ्गा। असिता। पलिता। असिक्नी। पलिक्नी। 'अवदाता'—लाल। काला। 'पिशङ्गादुपसंख्यानम्' वा० से तकारोपध न होने के कारण इस वार्तिक से ङीप् का विकल्प से विधान है। असित-पलित=काला और सफेद। अनुदात्तात तकारोपध होने से प्राप्त ङीप्—नत्व का 'असित-पलितयोर्न' वा० से निषेध है। 'छन्दसि क्नमेके' वा० वेद मे असितपलित के त को ङीप् के साथ 'क्न' आदेश को कतिपय आचार्य चाहते हैं। विशुद्धार्थक(वर्ण नहीं) होनेसे तोपध होने पर भी 'अवदात'से टाप् ही होगा।

कल्माषी । सारङ्गी । अनुदात्तान्तात् किम् ? कृष्णा । कपिला—नानारंगवाली । मिश्र रंग की । काली । लालकाली । 'अन्यतो ङीष्' तकारोपध से भिन्न वर्णवाचक अनुदात्त अन्तवाले प्रातिपदिक से स्त्रीलिंग मे ङीप् होगा । फिट्स्वर से कृष्ण-कपिल अन्तोदात्त हैं, अतः टाप् ।

नर्तकी । गौरी । अनड्वाही-अनडुही—नाचनेवाली । गौरी-अथवा पार्वती । बैल की स्त्री दोनो । 'षिद्गौरादिभ्यश्च' ष् इत् है जिनकी और 'गौर' आदि शब्दों से ङीप् होगा । 'शिल्पिनि ष्वुन्' से षित् प्रत्यय ('षः प्रत्ययस्य' से ष लोप) है । 'अनडुहः स्त्रियाम् आम् वा' वा० गौरादिगण मे पठित अनडुह् को इस वार्तिक से आम् विकल्प और ङीष् है ।

मत्सी-दंष्ट्रा—स्त्री मछली । दान्त । 'सूर्यतिष्यागस्त्यमत्स्यानां य उपधायाः' अङ्ग की उपधाभूत य का लोप होगा, वह यदि सूर्य तिष्य अगस्त्य मत्स्य का अवयव हो । गौरादित्वात् ङीष्, उक्तसूत्र से यलोप, 'यस्येति च' से अ (य के अ का) लोप । 'मातरि षिच्च' से डामहच् को षित् करने से ही ङीष् प्राप्त था ही, फिर भी 'मातामही' को गौरादिगण में पाठ करना 'षित् को ङीष् अनित्य है' यह ज्ञापित करता है, अत. 'दाम्नीश०' इत्यादि से दंश को ष्ट्रन्-प्रत्यय से निष्पन्न दंष्ट्र-से षित् होने पर भी टाप् ही हुआ ।

जानपदी । जानपदा । कुण्डी । कुण्डाऽन्या । गोणी । गोणाऽन्या । स्थली । स्थलाऽन्या । भाजी । भाजा । नागी । नागा । काली । काला । नीली । नीला । नीली । नीली गौः । नीली नीला । कुशी । कुशा । कामुकी । कामुका । कबरी । कबरा— जीविका । देश मे उत्पन्न । बर्तन विशेष । जलाने योग्य । बोरा । किसी का गोणा नाम है । स्वाभाविक जमीन । बनायी भूमि । व्यजन विशेष । पाकविशेष । स्थूल । गज । सर्प । काली । भयकर । नीलरग । नीली से रगा हुआ । ओषधि । प्राणि । नाम । लोह विशेष । शङ्कुविशेष(वैदिक प्रयोग) । सभोग की इच्छा रखनेवाली । धनादि चाहनेवाली । केशों का समूह । चित्ररग वाली । ये सब क्रम से अर्थ है । 'जानपदकुण्डगोणस्थलभाजनागकालनीलकुशकामुककबराद् वृत्त्यमत्रावपनाकृत्रिमाश्राणास्थौल्यवर्णानाच्छादनायोविकारमैथुनेच्छाकेशवेशेषु' इन ग्यारह प्रातिपदिकों से क्रम से वृत्ति (जीविका) आदि अर्थों मे ङीष् होगा । इनसे अतिरिक्त

अर्थों मे इन्हीं प्रातिपदिकों से टाप् होगा। 'नील्या अन्वक्तव्यः' वा०, से नीला। नीलशब्द ओषधि-प्राणिवाचक से ही ङीष्। 'नीलादोषधौ' प्राणिनि च' वा०। 'सञ्ज्ञाया वा' वा० ङीप्विकल्प।

शोणी। शोणा। मृद्वी। मृदु। उतः किम्। शुचि। गुणेति किम्? (१) आखु। (२) खरुः = पतिंवरा कन्या। पाण्डुः—लाल। सुकुमारी। पवित्र। १—चूही। २—पतिका वरण करनेवाली। श्वेत वर्णवाली। 'शोणात्प्राचाम्' शोण शब्द से ङीष् विकल्प से होगा। पक्ष मे टाप्। 'वोतो गुणवचनात्' उत् अतवाले गुणवाचक शब्द से विकल्प से ङीप् होगा। 'उत् अतवाले' कहने से गुणवाचक होने पर भी 'शुचि' से वैकल्पिक भी ङीप् नहीं। यह औणादिक इ प्रत्ययान्त है। 'गुणवाचक'–कथन से उदन्त होने पर भी 'आखु' से ङीप् नही। 'खरुसयोगोपधान्न' वा० खरु-शब्द और संयोगोपध ('हलोऽनन्तराः०' 'अलोऽन्त्यात्पूर्व०') से भी 'वोतो०' से ङीप् नही। 'पाण्डु' मे सयोगोपध–(ण्ड्) होने से ङीप् नहीं।

बह्वी। बहु। रात्रिः। रात्री। शकटिः। शकटी। अक्तिन्नर्थात् किम्—अजननिः। पद्धतिः। पद्धती—बहुत। रात। गाडी। अनुत्पत्ति। मार्ग। 'बह्वादिभ्यश्च' बह्वादिगणपठित शब्दो से विकल्प से ङीष् होगा। 'कृदिकारादक्तिनः' गणसू० 'कृत्' के इकारान्त प्रातिपदिक से ङीष् विकल्प से हो, पर 'क्तिन्' अन्त स नहीं। रात्रि रा-धातु से औणादिक त्रिप् प्रत्यय से निष्पन्न है। 'सर्वतोऽक्तिन्नर्थादित्येके' गणसू० कृत् के इकारान्त प्रत्यय तथा अकृत् इकारान्त से भी ङीप् वैकल्पिक है। शकटि अव्युत्पन्न प्रतिपादिक है। 'स्त्रियाँ क्तिन्' इस अधिकार मे 'आक्रोशे नञ्यनि' से निष्पन्न 'अजननि' यद्यपि विशुद्ध क्तिन्नन्त न होने से उससे ङीप् प्राप्त होता है, तथाऽपि अब 'अक्तिन्नर्थात्'–कहने से क्तिन्नर्थक होने के कारण यहा ङीष् निषेध हो जाता है। क्तिन्नन्त होने के कारण अप्राप्त ङीष् का वैकल्पिक विधान करने ही के लिये 'पद्धति' शब्द का बह्वादिगण में पाठ किया गया है।

गोपी। गोपालिका। अश्वपालिका—अहीर की स्त्री। गो तथा अश्व पालन करने वाले की स्त्री। 'पुंयोगादाख्यायाम्' जो पुरुष वाचक नाम पुरुष के सम्बध (दाम्पत्य) से स्त्री का वाचक है, उससे ङीष्। 'गोपस्य स्त्री' इस अर्थ मे ङीष्। 'पालकान्तान्न' वा० उक्त शब्द 'पालक' अन्तवाला हो तो ङीष्

न होगा। टाप्। इसी प्रकार 'अश्वपालक की स्त्री' अर्थ मे टाप्। 'प्रत्यय'-से इत्व।

सूर्यस्य स्त्री देवता सूर्या। देवतायां किम्? सूरी। कुन्ती, मानुषीयम्—सूर्य की देवता जाति की स्त्री। 'सूर्याद्देवताया चाब्वाच्यः' देवता जाति की स्त्री मे पुरुषसम्बन्ध से विद्यमान सूर्यशब्द से 'आप्' कहना चाहिये। 'देवता' कहने से ये दोनों मनुष्या होने के कारण ङीष्। 'सूर्यतिष्या०' से य-लोप 'यस्येति च' से अ-लोप।

इन्द्राणी। हिमानी। अरण्यानी। यवानी। यवनानी। मातुलानी। मातुली। उपाध्यायानी। उपाध्यायी। उपाध्याया। उपाध्यायी। आचार्यानी। आचार्या। अर्याणी। अर्या। क्षत्रियाणी। क्षत्रिया। पुंयोगे तु-अर्यी। क्षत्रियी। कथं ब्रह्माणीति—इंद्र की स्त्री। बर्फ का ढेर। बडा जगल। खराब जौ। यवनों की लिपि। मामी। अध्यापिका। आचार्य की स्त्री। स्वयं गुरु आनी। मालिकिन वा वैश्यक्षत्रिय जातिवाली। वैश्य की स्त्री। क्षत्रिय की स्त्री। 'इन्द्र वरुण भव-शर्व-रुद्र-मृड-हिमारण्य यव-यवन-मातुलाचार्याणामानुक्' इन शब्दों को आनुक् आगम होगा। इन्द्र से मृड तक के ६ शब्दों को तथा मातुल और आचार्य शब्दों को तो पुयोग मे ही आनुक् आगम होगा। 'अन्यतो ङीष्' से सिद्ध ही है। हिम अरण्य यव यवन-इनसे तो आनुक् (आन्) आगम और ङीष् भी होगा। 'हिमारण्ययोर्महत्त्वे' महान्-इस अर्थ मे आनुक्-ङीष्। 'यवाद्दोषे' वा० से आनुक्-ङीष्। 'यवनाल्लिप्याम्' वा० से। 'मातुलोपाध्याययोरानुग् वा' वा० इन दोनों मे आनुक् का ही विकल्प है, ङीष् तो पुयोगलक्षण (मातुलस्य स्त्री, उपाध्यायस्य स्त्री-अर्थ मे) होगा ही। 'या तु स्वयमेवाध्यापिका तत्र वा ङीषे वाच्यः' जो अपने पढाती है (उपाध्याय की स्त्री नही है) इस अर्थ मे विकल्प से ङीष् होगा, पक्ष मे टाप्। 'आचार्यादणत्वं च' वा० आचार्य की स्त्री इस अर्थ मे आनुक्-ङीष्, तथा 'अट्कुप्वाङ्' से प्राप्त णत्व नहीं होगा। 'अर्यक्षत्रियाभ्या वा स्वार्थे' वा० पुयोगाभाव मे भी अर्य तथा क्षत्रिय शब्दो से आनुक् तथा ङीष् पाक्षिक होंगे। णत्व। अर्य की तथा क्षत्रिय की स्त्री-इस अर्थ में ङीष् मात्र होगा। 'ब्रह्माणी' यह तो 'ब्रह्माणम्

आनयति (अन प्राणने)' इस अर्थ मे 'वर्णदण्' से अण् प्रत्ययान्त है। (आनुक् नहीं)। 'टिड्ढाणञ्'–से ङीप्।

वस्त्रक्रीती । क्वचिन्न–धनक्रीता । (१) अभ्रलिप्ती द्यौः । अल्पाख्यायां किम्। चन्दनलिप्ता अङ्गना—वस्त्र से खरीदी हुई । 'क्रीतात्करणपूर्वात्' क्रीत शब्द अत में है ऐसे तथा करण आदि में है ऐसे अदन्त शब्द से स्त्रीलिंग मे ङीप् होगा । वस्त्रेण (करण अर्थात् क्रयणरूपी क्रिया का साधन) क्रीता—अर्थ मे ङीष् हुआ । 'कर्तृकरणे कृता बहुल' मे 'बहुल' ग्रहण से ('बहुल' कभी प्रवर्तक कभी निवर्तक, और कही विकल्पक आदि भी होता है) टाबन्त (क्रीता) प्रकृति सुबन्त से समास करनेसे धनक्रीता मे अदत शब्द ही नहीं रहा कि ङीप् हो । १–थोडे बादलों से घिरा आकाश । 'क्तादल्पाख्यायाम्' करण आदि वाले क्त प्रत्ययान्त अदन्त से स्त्री लिंग मे अल्पता 'अभ्रैरीषच्छन्ना' द्योतन करनी हो तो ङीष् होगा । 'अल्पता द्योतन' क्यों? चन्दन पोती हुई स्त्री–यहा पर्याप्त चन्दन होने से–टाप् ।

ऊरुभिन्नी । नेह–बहुक्रीता । दन्तजाता । पाणिगृहीती । पाणिगृहीता—जांघ असंयुक्त है जिसकी । जिसने बहुतों को खरीदा । जिसको दात उत्पन्न हुआ है । पत्नी । दासी । 'बहुव्रीहेश्चान्तोदात्तात्' बहुव्रीहि जो क्त प्रत्ययान्त तथा अन्तोदात्त अदन्त है उस से स्त्रीलिंग में ङीप् होगा । 'ऊरू भिन्नौ यस्याः' बहु० समास है, 'भिन्न' क्तान्त है और 'जातिकालसुखादिभ्यः–' से निष्ठा का परनिपात तथा अन्तोदात्त है । ङीप् । 'बहवः क्रीता यया' यह भाष्योदाहृत प्रत्युदाहरण है । 'जातान्तान्न' वा० 'दन्ता जाता यस्याः' यहाँ जात शब्द अन्त मे रहने से उक्त वार्तिक से ङीप् नहीं, टाप् । 'पाणिगृहीती भार्यायां' वा० स 'पाणिः गृहीतः यस्याः' अर्थ मे ङीप् । जो शास्त्रविधि से परिगृहीत नहीं है वैसी दासी आदि पाणिगृहीता है ।

सुरापीती । सुरापीता । अन्तोदात्तात् किम्? वस्त्रच्छन्ना—मदिरा पियी हुई । वस्त्र से ढकी । पिछले 'बहुव्रीहे०'–से प्राप्त नित्य ङीष् इस 'अस्वाङ्गपूर्वपदाद्वा' अस्वाङ्ग (अद्रव, मूर्तिमान्–आदि अगले कहे जानेवाले) है पूर्व पद उससे परे जो क्त प्रत्ययान्त, ऐसे क्तान्तान्त बहुव्रीहि से विकल्प

से ङीप् होगा। 'सुरा पीता यया' यह बहुव्रीहि क्त प्रत्ययात-पीता-अन्त-वाली है। 'अनाच्छादनात्' से अनुदात्त अंत वाला होने से-वस्त्रच्छन्ना-मे विकल्प से भी ङीष् नहीं।

अतिकेशी। अतिकेशा। चन्द्रमुखी। चन्द्रमुखा। सयोगोपधात्तु (१) सुगुल्फा। उपसर्जनात् किम्? (२) शिखा। (३) सुस्वेदा। (४) सुज्ञाना। (५) सुमुखा शाला। (६) सुशोफा। (७) सुकेशी, सुकेशा वा रथ्या। (८) सुस्तनी सुस्तना वा प्रतिमा—केशों का अतिक्रमण करने वाली। चाँद जैसे मुखवाली।

१—सुदर घुटनेवाली। २—चुडी। ३—दुर्गंध रहित पसीना वाली। ४—अच्छे ज्ञानवाली। ५—सुदर अग्रभागवाला हॉल्। ६-बहुत फूली हुई। ७—सुन्दर बालों से युक्त मार्ग। ८—सुन्दर स्तन जैसे अवयव से युक्त। 'केशान् अतिक्रान्ता' इस तत्पुरुष समास मे 'स्वाङ्गाच्चोपसर्जनाद-संयोगोपधात्' संयोग उपधा नहीं, ऐसा एव अन्य का विशेषण, जो स्वाङ्ग—तदन्त अ अन्तवाले प्रातिपदिक से विकल्प से ङीष् होगा-से पाक्षिक ङीष्। पक्ष मे अदन्तत्वात् टाप्। 'चन्द्र इव मुख यस्याः' मे भी इसीसे ङीष् विकल्प। स्वाङ्ग की परिभाषा—'अद्रवं (१) मूर्तिमत् (२) स्वाङ्गं प्राणिस्थमविकारजम् (३)। अतत्स्थं तत्र दृष्ट च तेन चेत्तत्तथा युतम्॥' अर्थात् नहीं पिघलनेवाला, आकार से युक्त, प्राणि मे नहीं रहनेवाला, विकार से उत्पन्न नहीं, उसमे रहने वाला नहीं पर वहाँ दीखता हो, प्राणिस्थ स्तनादि अवयव से युक्त प्रतिमादि वस्तु प्राणिवत् दीखती हो, ये 'स्वाङ्ग' कहाते है। 'सु गुल्फौ यस्याः' यहाँ संयोग उपधा (ल्फ्-उपान्त्य वर्ण-उपधा) है, अतः ङीष् नही। केवल 'शिखा' किसीका विशेषण न होने से ङीष् नहीं। ३-४-५-६ उदाहरण द्रव-आकाररहित-प्राणिगत नही तथा विकार (रोग) से उत्पन्न (फूलना) होने से स्वाङ्ग न होने के कारण ङीष् नहीं। ७ वे उदाहरण मे केश अब प्राणी मे नही रहनेपर भी प्राणी मे दीखता है-यह भी स्वाङ्ग है, विकल्प से ङीष्। ८ प्राणिस्थ स्तन से युक्त (स्वाग) होने से ङीष् विकल्प।

तुङ्गनासिकी-तुङ्गनासिकेत्यादि। सहनासिका। अनासिका। (१)स्वङ्गी स्वङ्गेत्यादि। (२) सुपुच्छी सुपुच्छा। (३) कबरपुच्छी मयूरी। (४) उलूकपक्षी शाला। (५) उलूकपुच्छी सेना—उन्नत नाक से युक्त। नासिका से युक्त। नाक से हीन।

१—अच्छे अवयववाली। २—अच्छी पूंछवाली। ३—नाना रग की पूंछवाली मोरिनी। ४—उल्लू के पॉख जैसे पार्श्व भागवाली हॉल। ५—उल्लू के पिछले भाग जैसे पृष्ठ भाग वाली सेना। 'नासिकोदरौष्ठजङ्घा-दन्तकर्णशृङ्गाच्च' नासिका उदर ओष्ठ जङ्घा दन्त कर्ण शृग इन (उपसर्जन-भूत नासिकादि अंतों) से ङीप् विकल्प से होगा। इनमे नासिका-उदर-को अगले 'नक्रोडादि'-से अनेकाच् होने से प्राप्त ङीप् निषेध का बाध हो जाता है। ओष्ठ आदि ५ का 'असयोगोपधात्–'से प्राप्त ङीप् निषेध का बाध है। आगे आनेवाले 'सहनञ्'–सूत्र इस 'नासिको'–का बाधक है। वह सह तथा नञ् पूर्ववाले से ङीष् निषेध करता है। १–'अङ्गगात्रकण्ठेभ्यो वक्तव्यम्' वा० यहॉ सयोगोपध (ङ्ग) होने से ङीष् निषेध प्राप्त था। अतः यह वचन है। (भाष्याद्यनुक्त होनेसे ङीषन्त प्रयोग ठीक नहीं–ऐसा प्रामाणिकों का मत है। इस वार्तिक की आवश्यकता ही नहीं, अनुक्तों का भी सग्रह बोधक 'नासिको–'सूत्रगत 'च' से ही कार्य हो जाता है–ऐसा भी कतिपयों का कथन है) २—'पुच्छाच्च' वा० संयोगोपध होने पर भी पुच्छात से वा ङीष् होगा। ३—'कबरमणिविषशरेभ्यो नित्यम्' वा० कबरादि पुच्छान्त से नित्य ङीप्। ४—'उपमानात्पक्षाच्च पुच्छाच्च' वा० से ङीप्।

कल्याणक्रोडा। सुजघना। सकेशा। अकेशा। (१)विद्यमाननासिका—मगल है भुजों का मध्य ('न ना क्रोडं भुजान्तरम्' अमर) जिसका। सुंदर जॉघवाली। केशों से युक्त एवं हीन। १–(अच्छी)नाकवाली। 'न क्रोडादिबह्वचः' क्रोडादि से (यह १ गण है, जिसमे क्रोड शब्द पहला है) तथा अनेक अच् वाले स्वागों से ङीप् न होगा। दोनों उदाहरणों मे टाप्। 'सहनञ्विद्यमान-पूर्वाच्च' सह-न-विद्यमान—इन पूर्व पदों से युक्त शब्द से भी ङीप् नहीं होगा। क्रमशः उदाहरण ३। टाप्।

शूर्पणखा। गौरमुखा। संज्ञायां किम्? ताम्रमुखी कन्या—रावण भगिनी का नाम–सूप जैसे नखवाली। गोरा मुंहवाली, यह भी किसी का नाम है। लाल मुंह वाली–यह यौगिक शब्द है। 'नखमुखात् संज्ञायाम्' 'स्वाङ्गा'–से प्राप्त ङीष् नख मुख अन्तवाले प्रातिपदिकों से सज्ञा में नहीं होगा। टाप्। नाम न होने पर 'ताम्रं मुखं यस्याः' इस अर्थ मे ङीप् होगा।

प्राङ्मुखी। 'दित्यवाट् च मे दित्यौही च मे'—'दिक्पूर्वपदान् ङीप्' दिक् है पूर्वपद जिसका ऐसे स्वाङ्ग अंतवाले प्रातिपदिक से पर मे ङीष् को ङीप् होगा। रूप मे समान होने पर भी स्वर मे विशेषता है। 'प्राक्मुख यस्याः' अर्थ मे पूर्व सूत्र से प्राप्त ङीष् का ङीप् होगा। 'वाहः'सू० वाह् अन्तवाले प्रातिपदिक से ङीष् होगा। यह वैदिक (रुद्री) उदाहरण है। यहाँ 'दित्यं वहतीति' अर्थ मे छन्द मे ण्वि प्रत्यय होकर उपधावृद्धि आदि होने के अनन्तर दित्यवाह् शब्द से ङीष्।

सखी। अशिश्वी। (१) 'आ धेनवो धुनयन्तामशिश्वीः।' (२) तटी। (३) वृषली। सत्यन्त किम्? शुक्ला। सकृदित्यादि किम्? देवदत्ता—सखी। बिना संतान वाली। 'सख्यशिश्वीति भाषायाम्' सखि शब्द तथा अशिशु शब्द से ङीष् का निपातन होता है लोक मे। सूत्र मे 'इति' का अर्थ सजातीयता है, तथाच वेद मे भी क्वचित् ङीष् होता है। १—यह वैदिक उदाहरण है। २—किनारा। ३—शूद्र की स्त्री। 'जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्'जाति का वाचक-जो नियत स्त्रीलिंग नहीं, और य उपधा नहीं जिसका-ऐसे शब्द से स्त्रीलिंग मे ङीष् होगा। 'आकृतिग्रहणा जातिः' एकरूप आकार से जो पहचाना जाता है वह 'जाति' है। तट-शब्द जल समीप प्रदेश विशेष का वाचक है, अनियत स्त्रीलिंग एव य उपधा नही, तट त्रिलिंग है-अतः ङीष्। 'असर्वलिंगत्वेन सत्येकस्या व्यक्तौ कथनाद् व्यक्त्यन्तरे कथनं विनापि सुग्रहा जातिः' 'यह वृषल है' ऐसा एक व्यक्ति का परिचय कराने पर उसके पुत्र-कलत्रादि मे बिना कहे वृषलत्व का बोध हो जाय और वह शब्द सभी लिंग मे नही हो (नपुंसकलिंग मे 'वृषल' नहीं है)-वह भी जाति है यह दूसरा लक्षण है। इसके अनुसार 'असर्वलिंगत्वेन' कहने से शुक्लत्व (शुक्ल शब्द त्रिलिंग-विशेष्याधीन है)जाति नही,अतः ङीप् नहीं। एक व्यक्ति का परिचय कराने पर भी व्यक्त्यन्तर मे बिना बताये परिचय न होने से 'देवदत्ता' जाति नहीं, ङीप् नही।

औपगवी। कठी। कलापी। बह्वृची। 'ब्राह्मणी'। (१) जातेः किम्? मुण्डा। (२)अस्त्रीविषयात् किम्? बलाका। अयोपधात् किम्? क्षत्रिया—उपगु की कन्या सन्तान। कठ से प्रोक्त वेद को पढ़नेवाली। वैशम्पायन की शिष्या।

ऋग्वेद पढ़नेवाली। ब्राह्मण की पुत्री। 'तस्यापत्यं–' से 'उपगो अपत्यं' अर्थ मे अण्, आदि वृद्धि, औपगव, 'टिड्ढाणञ्' से प्राप्त ङीप् को बाधकर पर होने से 'गोत्र च चरणैः सह' अपत्यप्रत्ययान्त तथा शाखाध्येतृवाची शब्द जातिकार्य–ङीप् को प्राप्त होगा-से ङीप्। 'कठेन प्रोक्तमधीतेऽर्थ मे 'कलापिवैशम्पायनान्तेवासिभ्यश्च' से प्राप्त णिनि का 'कठचरकाल्लुक्' से लुक्, ततः 'तदधीते' से प्राप्त अण् को 'प्रोक्ताल्लुक्' से लुक्। तदनन्तर इस 'गोत्र च'–से ङीप्। 'बह्वः ऋच. अध्येयाः यस्याः' अर्थ में 'ऋक्पूरब्धूः'- से 'अनृचबह्वृचावध्येतर्येव' से समासान्त अ। उसके बाद ङीप्। 'ब्रह्मणः अपत्यम्–' इस अर्थ मे अण्, 'ब्राह्मोऽजातौ' से टिलोप न होने पर आदि-वृद्धि, ब्राह्मण। स्त्रीलिङ्ग मे जातिलक्षण ङीप् को बाध कर शार्ङ्गरवादि गणमें पाठ होने से 'शार्ङ्गरवाद्यञो ङीन्' से ङीन्। १—माथा मुंडी हुई। 'जाति' कथन का प्रयोजन 'मुण्डा' मे ङीप् न होना। क्योंकि यह आकृतिव्यग्यता-असर्वलिंगता-गोत्रचरणरूपी जातिलक्षणों मे आता ही नही। २—पक्षि विशेष। 'जातेरस्त्रीविषयात्–'मे 'जो नियत स्त्रीलिंग नहीं' कहने से 'बलाका' नियतस्त्रीलिंग होने से ङीप् नही। 'य उपधा नहीं' कहने के कारण 'क्षत्रिया' मे ङीप् नहीं।

हयी। गवयी। मुकयी। मनुषी। मत्सी—घोड़ी। गोसदृश जाति। पशुविशेष। 'योपधप्रतिषेधे हय-गवय-मुकय-मनुष्य-मत्स्यानामप्रतिषेधः' वा० इन शब्दों का य उपधा होने पर भी ङीष् होगा। मनुष्य शब्द से स्त्रीलिंग में ङीप्, 'हलस्तद्धितस्य' से य-लोप, 'यस्येतिच' से य-के अ-लोप। 'मनोर्जातावञ्यतौ षुक्च' मनुशब्द से अपत्यार्थ अञ्यत् प्रत्यय होंगे, प्रकृति (मनु) को षुक् भी होगा, यदि जाति गम्य हो। 'मत्स्यस्य ङ्याम्' वा० मत्स्यशब्द के य का लोप होगा ङी परे रहने पर ही, 'यस्येति च' अ-लोप।

ओदनपाकी। शङ्कुकर्णी। शालपर्णी। शङ्खपुष्पी। दासीफली। दर्भमूली। गोवाली—ये सभी वनस्पतिविशेषों का रूढ नाम है। 'पाक-कर्ण-पर्ण-पुष्प-फल-मूल-वालोत्तरपदाच्च' पाक आदि उत्तरपद हैं जिनके, ऐसे जातिवाचक शब्दों से–जो नियतस्त्रीलिंग भी हो–ङीष् होगा।

दाक्षी। औदमेयी। मनुष्येति किम्? तित्तिरिः—दक्ष की कन्या। उदमेय की

कन्या। 'इतो मनुष्यजाते.' इत् अन्त मनुष्य जातिवाची शब्द से स्त्रीलिंग मे ङीष् होगा। 'दक्षस्य अपत्यं स्त्री' इस अर्थ मे 'अत इञ्' से इञ्। आदिवृद्धि। ङीष्। 'यस्येति च' से दाक्षि के इ का लोप। ('गोत्रं च चरणैः सह' से जातिवाचक है) 'उदमेघस्य अपत्यं स्त्री' अर्थ मे 'अत इञ्' 'यस्येति च' से अल्लोप। आदिवृद्धि, औदमेघिशब्द से ङीष्। इ-लोप। मनुष्यजाति-कहने से पक्षिवाचक 'तित्तिरि' से ङीप् नहीं।

कुरूः। "अयोपधात् किम्? अध्वर्युं ब्राह्मणी। अलाब्वा। कर्कन्ध्वा। कृकवाकुः। रज्जुः। हनु—कुरुक्षेत्र के राजा की पुत्री। अध्वर्युशाखाध्ययिनी। लौकी। बेर। मुर्गी। रस्सी। कपोल। 'ऊङुतः' उकारान्त अ-योपध मनुष्यजाति वाची शब्द से स्त्रीलिंग मे ऊङ् होगा। 'कुरुना-'से विहित ण्य को 'स्त्रियामवन्ति' से लुक्। कुरु-ऊ सवर्ण दीर्घ। अयोपध-कहने से अध्वर्यु शब्द से ऊङ् नहीं। 'अप्राणिजातेश्चारज्ज्वादीनामुपसंख्यानम्' रज्ज्वादि सदृश(अर्थात् उकारान्त) रज्जु से अतिरिक्त प्राणिजाति से भिन्न शब्द से ऊङ् होगा। अलाबू-कर्कन्धू स्वयम् ऊदन्त है, यहाँ(तृतीयाका रूप है)ऊङ् विधान का फल 'नोङ् धात्वोः' से विभक्ति के उदात्तत्व का निषेध करना है। प्राणिजाति से तो-कृकवाकु-मे-ऊङ् नहीं होगा। (यह प्रत्युदाहरण है)। रज्जु-हनु आदियों से-वार्तिक मे निषेध के कारण-ऊङ् नहीं।

भद्रबाहूः। सञ्ज्ञाया किम्? वृत्तबाहुः—किसीका नाम। गोल हाथ हैं जिसके। 'बाह्वन्तात्सञ्ज्ञायाम्' बाहु अंतवाले प्रातिपदिक से स्त्रीलिंग में ऊङ् होगा सज्ञा मे। 'सज्ञामे' कहने से 'वृत्तौ बाहू यस्याः' इस अर्थमे ऊङ् नहीं होगा।

पङ्गूः। श्वश्रूः—पंगु। सास। 'पङ्गोश्च' पगुशब्द से स्त्रीलिंग मे ऊङ् होगा। 'श्वशुरस्योकाराकारलोपश्च' वा० 'श्वशुर' मे शु तथा र के उत्तर मे रहने वाले उ-अ का लोप होगा। चकार से-जो कि समुच्चयार्थक है-ऊङ्। पुंयोगलक्षण ङीष् (श्वशुरस्य स्त्री' अर्थ मे प्राप्त) का अपवाद है। यद्यपि श्वश्रू शब्द से सुप् होना ('ङ्याप्प्रातिपदिकात्' मे ङी तथा आबन्त प्रातिपदिक से स्वादि विहित है-नकि ऊङन्त से) सभव नहीं, तथापि 'प्रातिपदिकग्रहणे लिङ्गविशिष्टस्यापि ग्रहणम्' परिभाषा से सुबुत्पत्ति। रुत्व विसर्ग।

करभोरूः। संहितोरूः। शफोरूः। लक्षणोरूः। वामोरूः। संहितोरूः। सहोरू—:

करभ ('मणिबन्धादाकनिष्ठ करस्य करभो बहिः') जैसी जाँघवाली। अच्छी तरह जुटी जाँघ वाली। खुर जैसी जाँघ, मृदुत्वादिलक्षण से युक्त जाँघ, सुन्दर जाँघ, हित से युक्त तथा भार सहने वाली जाँघ है जिसकी। 'ऊरूत्तरपदादौपम्ये' उपमानवाचक पूर्वपद है तथा उत्तरपद ऊरु है जिस प्रातिपदिक का उससे स्त्रीलिंग मे ऊङ् होगा। 'संहितशफलक्षणवामादेश्च' पूर्व में इन शब्दों से युक्त ऊरु उत्तरपद वालों से असादृश्य में भी ऊङ् होगा। 'सहितसहाभ्यां चेति वक्तव्यम्' वा० इन से युक्त ऊरु शब्द से भी ऊङ् होगा। उपमानवाचक न होने से वार्तिक से सग्रह किया गया।

कद्रूः। कमण्डलूः। संज्ञायां किम्? कद्रुः। कमण्डलु.—नागमाता। मृगविशेष। 'सज्ञायाम्' कद्रु–कमण्डलु शब्दों से सज्ञा मे स्त्रीलिंग मे ऊङ् होगा। संज्ञा न होने से आगे के दोनों कद्रु कमडलु मे ऊङ् नही।

शार्ङ्गरवी। वैदी। नारी—शृङ्गरू की कन्या। विद की कन्या। मनुष्यस्त्री। 'शार्ङ्गरवाद्यञो ङीन्' शार्ङ्गरवादि के जो अञ् का अकार, तदन्त जातिवाचक से ङीन् होगा। पुयोग मे तो ङीप् ही होगा। 'नृनरयोर्वृद्धिश्च' वा० नृ से ङीन्। वृद्धि ऋ को आर् (रपर)। नर शब्द से ङीन्, न के अ को इसी वार्तिक से, वृद्धि-आ। रेफोत्तर अ-का 'यस्येति च' से लोप हो जाता है।

आम्बष्ठ्या। कारीषगन्ध्या। शार्कराक्ष्या। पौतिमाष्या। आवट्या—अम्बष्ठ की पुत्री। गोबर सी गन्धवाले की कन्या। शर्कराक्ष की पुत्री। पूतिमाषकी कन्या। अवट की पुत्री। 'यङश्चाप्' यङन्त से स्त्रीलिंग मे आप् होगा। 'अम्बष्ठस्यापत्यं स्त्री' इस अर्थ मे 'वृद्धेत्कोसला-'से ञ्यङ्, वृद्धि। आम्बष्ठ्यसे आप्। 'करीषस्येव (गोबर की सी) गन्धो यस्य' करीषगन्धि की कन्या सन्तान-अर्थ मे अण्, उसको 'अणिञो'-से ष्यङ्। 'षाद्यञश्चाब्वाच्यः' वा० षकार से परे जो यञ् तदन्त से भी आप् होगा। 'शर्कराक्षस्य, पूतिमाषस्य च अपत्य स्त्री' अर्थ में 'गर्गादिभ्यो यञ्' से यञ्। आप्। 'आवट्याच्च' 'अवटस्य अपत्यं स्त्री' अर्थ मे गर्गादि यञ्। 'यस्येति च'-से अलोप। आदिवृद्धि-आवट्य से आप्।

युवतिः। बहुयुवा। युवती—युवती (जवान स्त्री)। बहुत से युवक जिस (शाला)

पर हों। मिश्रण करने वाली। 'यूनस्तिः' युवन् शब्द से ति प्रत्यय होगा और वह तद्धित कहायगा। लिंगविशिष्ट परिभाषा से ही प्रातिपदिकत्व सिद्ध होने पर 'तद्धित' का अधिकार आगे के लिये है। अनुपसर्जन (अविशेषण) से ही ति होगा। 'बहवः युवानः यस्याः' अर्थ में उपसर्जन होने से ति नहीं। 'युं–मिश्रणे' लट् से शतृ, शब्लुक्, उवङ्-ङीप् से 'युवती'।

कौमुदीयप्रयोगाणां सम्बद्धाः सूत्रवार्तिकाः।
व्याख्याता राष्ट्रभाषाया समासेन ससाधनम् ॥
परीक्षार्थिहितार्थं वै कृतेयं कृतिरादरात्।
अर्प्यते भगवत्पादे यत्करोषीति शासनात् ॥

इति श्रीजितेन्द्रियाचार्योद्भावितं सिद्धान्तकौमुदीस्त्रीप्रत्ययान्तविवरणम्।